

ॐ श्रीश्रीगुरुनौराज्ञै जयतः ॥



सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । | सब धर्मों का अेष्ट रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षज की श्रहेतुकी विष्वशूल्य अति मंगलदायक ॥ | हिन्दु इसि-कथा-प्रीति न हो, अम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ४ { गौरान्द ४७२, मास—पुरुषोत्तम ३०, वार—गभौदशायी
शुक्रवार, ३० श्रावण, सम्वत् २०१५, १५ अगस्त १९५८ } संख्या ३

श्रीलोकनाथ-प्रभुवराष्ट्रकम्

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्तिटक्कुर-विरचितम्]

यः कृष्णचैतन्य-कृपैकवित्तहतयेम-हेमाभरणाद्य-चित्तः ।
निष्वय भूमी सततं चमामस्तं लोकनाथं प्रभुमाभयामः ॥१॥
यो लक्ष्म-हृन्दावन-नित्यदासः परिस्फुरत-कृष्ण-विज्ञास-रासः ।
स्वाधारचर्चर्या-सतताविदामस्तं लोकनाथं प्रभुमाभयामः ॥२॥
सदोलजसद्-भागवतानुरक्षया यः कृष्ण राधा-श्रवणादि-भक्त्या ।
आद्यतथामीकृतः सर्वधामस्तं लोकनाथं प्रभुमाभयामः ॥३॥
वृन्दावनाधीश-पद्मावत-सेवा-स्वादेऽनुमउग्नित न हन्त । के वा।
यहतेष्वपि इत्याध्यतमोऽभिरामस्तं लोकनाथं प्रभुमाभयामः ॥४॥
यः कृष्णलोका-रस एव लोकान् अनुन्मुखान् वीचय विभक्ति शोकान् ।
स्वयं तदास्वादनमात्र-कामस्तं लोकनाथं प्रभुमाभयामः ॥५॥

कृपावलं यस्य विवेद कश्चित् न रोचमो नाम महान् विपश्चित् ।
 यस्य प्रथीयान् विषयोपराम-स्वं लोकनाथं प्रभुमाश्रयामः ॥६॥
 रागानुगा-वर्मनि याप्यसादा-द्विशन्त्वविज्ञा अपि निविषादाः ।
 जने कृतागस्यपि यस्त्ववामस्तं लोकनाथं प्रभुमाश्रयामः ॥७॥
 यदास-दासानुग-दास-दासाः चर्यं भवामः फलिताभिलापाः ।
 यदीयतां सहसा विशामस्तं लोकनाथं प्रभुमाश्रयामः ॥८॥
 श्रीलोकनाथाष्टकमध्युदारं, भक्त्या पठेत् यः पुरुषार्थ-सारम् ।
 स मंजुलाली-पदवीं प्रपद्य, श्रीराधिकां सेवत् एव सदः ॥९॥
 सोऽयं श्रीलोकनाथः स्फुरतु पुरु-कृपा-रश्मिभिः स्वैः समुद्य—
 नुद् त्योद् त्य यो नः प्रज्ञुरतम-तमः-कृपतो दीपिताभिः ।
 हर्षभिः स्वप्रेम वीर्या दिशमदिशदहो यां श्रिता दिव्यजीला—
 इत्नाक्षं विष्वद्माना चर्यमपि निभृतं श्रील-गोवद्दं म स्मः ॥१०॥

अनुवाद—

श्रीकृष्ण चैतन्यदेवकी कृपा ही जिनका एकमात्र धन है और जिनका चित्त गीर-प्रेमरूप सोनेके आभूपणोंसे विभूषित है, उन लोकनाथ प्रभुका मैं पृथ्वी पर पतित होकर आश्रय लेता हूँ ॥१॥

जो बृन्दावनमें नियं निवास करते हैं, जिनके हृदयमें श्रीकृष्णके रासविलास सदा स्फूर्ति प्राप्त हुआ करते हैं, जो अपने कर्तव्योंके पालनमें ही सदा व्यस्त रहा करते हैं, उन श्रीलोकनाथ प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ ॥२॥

जो श्रीमद्भागवतके और भगवद्भक्तोंके प्रति आसक्ति (प्रीति) प्रकाश करनेमें तथा श्रीश्रीराधा-कृष्णके प्रति अवण-कीर्तन आदि नवधा भक्तिके अनुष्ठानमें दिनरात—आठों-पहर तत्पर रहते हैं, उन लोकनाथ प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ ॥३॥

बृद्धावनाधीश श्रीश्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंके सेवा-सका आस्थादन करनेमें भला कौन नहीं निमग्न होता अर्थात् उसका सभी रसास्थावन किया करते हैं । जो उन सब महानुभावोंमें भी अत्यन्त प्रशंसनीय और चित्ताकर्षक हैं, उन श्रीलोकनाथ गोस्यामी प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ ॥४॥

जो लोगोंको कृष्ण-लीला आस्थादनमें विमुख देख कर दुःख प्रकाश करते हैं एवं स्वयं उस लीलारसको आस्थादनकी अभिलापा प्रकाश करते हैं, उन श्रीलोकनाथ प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ ॥५॥

महान् परिहृत श्रीनरोच्चम ठाकुर जिनके कृपा बलसे परिचित थे, जिनका विषयोंके प्रति वैराग्य सर्वत्र विस्त्रयात है, उन श्रीलोकनाथ प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ ॥६॥

जिनकी कृपासे अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति भी रागानुग-भक्तिमार्गमें प्रवेश कर शोकरहित हुआ करते हैं एवं जो अपराधी व्यक्तियोंके प्रति भी अनुकूल भाव रखते हैं, उन श्रीलोकनाथ प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ ॥७॥

जिनके दासका दास और पुनः उसकी दासता लाभकर हम लोग कृतार्थ हुए हैं और शीघ्र ही जिनकी भक्तमरडलीमें हम प्रवेश करेंगे, उन श्रीलोकनाथ प्रभुका मैं आश्रय लेता हूँ ॥८॥

जो पुरुष, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके सार-स्वरूप इस अति मनोज्ञ श्रीलोकनाथाष्टकका पाठ करते हैं, वे सखियोंकी

पद्धतिका आश्रय कर श्रीमती राधिकाजीकी सेवा प्राप्त होंगे ॥६॥

जो अपने प्रदीप नयनोंसे घोर अन्धकार पूर्ण कृप (संसार) से हमारा सम्पूर्ण रूपसे उद्धार कर हमें

हेम-मार्गका उपदेश देते हैं, अहो ! जिनकी कृपासे ही हम अप्राकृत लीला भण्डार-स्वरूप निर्जन श्रीगोविन्दन को प्राप्त हो सके हैं, वे श्रीलोकनाथ प्रभु अपनी कृपा-रथिमके सहित हमारे हृदयमें स्फूर्ति लाभ करें ॥१०॥

संत (सज्जन) के लक्षण अकृत-द्रोह (२)

इसके पहले हमने सज्जन पुरुषोंकी 'कृपालुता' गुणका विवेचन किया है। यहाँ पर उनके दूसरे गुण-'अकृत-द्रोह' के सम्बन्धमें लिखा जा रहा है। साधारणतः काय, मन और वाक्यसे किसीके प्रति हिंसाद्वेष न करनेको 'अकृत द्रोह' कहते हैं। यथार्थ वैष्णवोंके भीतर बाहर कहीं भी हिंसा-प्रवृत्ति नहीं होती है। क्योंकि वे स्वभावतः कृपालु होते हैं। कृपा, जैसे मनुष्यका भूषण है, हिंसा-वैसे ही मनुष्यका दूषण है। वैष्णवजन दूसरोंके प्रति कृपालु होते हैं—हिंसा-परायण नहीं। यदि किसीमें हिंसा द्वेष अर्थात् द्रोहाचार देखा जाय तो उसे बदापि वैष्णव नहीं कहा जा सकता है। किन्तु कुछ लोग इस गुणको परखनेमें भारी भूल करते हैं। वे यथार्थ कल्याण अथवा परोपकारकी वृत्तिको ही हिंसा अथवा द्रोह समझते हैं। यदि आदृत-सत्य परोपकारके लिये प्रकाशित किया जाय, तो उसे कृपा ही समझनी चाहिए। किन्तु अपकारकी भावनासे सत्यकी आइमें असत्यका प्रचार करना कृपाके नाम पर लोगोंके प्रति द्रोहाचरण है। यथार्थ वैष्णवजन ही सबे अकृत-द्रोह हैं। वे कभी किसीके प्रति हिंसा नहीं करते।

दो प्रकारकी हिंसाएँ

हिंसा दो प्रकारकी देखी जाती है। एक प्रकारकी हिंसा वह है, जिसमें हिंसुक व्यक्ति प्रकाश्यरूपमें काय, मन और वाक्यसे परहिंसाके लिये प्रयत्न करता है।

हिंसा करनेवाले जीवको हिंसा-कार्यसे निवृत्त न करना—यह दूसरी प्रकारकी हिंसा है। वैष्णवजन जीवको अन्याभिलाप, कर्म और ज्ञानके मायिक आवरणसे मुक्त होकर शुद्ध हरिसेवा करनेके लिए उपदेश देते हैं; इसमें उनकी अकृत-द्रोहिताका यथार्थ परिचय मिलता है। अबोध अपरिणामदर्शी जीव ऐसा समझते हैं कि वैष्णव लोग अन्याभिलापी, कर्मी और ज्ञानियों के प्रति द्वेष करते हैं। किन्तु उनका ऐसा समझना भूल है। वैष्णवजन दया-परवश होकर जीवोंके यथार्थ कल्याणकी ही कामना करते हैं। वे किसीके प्रति भी हिंसाका आचरण नहीं करते। जो वैष्णव मायावद्ध दुःखीजीवोंके दुःखसे द्रवित होकर दयापूर्वक उहें हरिसेवाका उपदेश प्रदान करते हैं—वे अकृत-द्रोह हैं। दूसरी ओर जो लोग राजस और तामस गुणों के अधीन होकर परहिंसामें तत्पर होते हैं, उन्हें सब लोग हिंसुक अवैष्णव कहते हैं। शुद्ध वैष्णव-स्वभावमें ये दोनों प्रकारकी हिंसाएँ नहीं पायी जातीं।

मांस, मछली और अण्डा भक्षण हिंसा है

अहिंसा परम धर्म है। परन्तु मांस, मछली और अण्डा भक्षणके लोभसे नाना प्रकारके जीवोंकी प्रचुर परिमाणमें हिंसा की जाती है। धर्मकी आइमें नाना प्रकारकी अयुक्तिसंगत तदोंकी अवतारणा कर कुछ लोगोंको हिंसा प्रवृत्तिका समर्थन करते हुए भी देखा जाता है। दुर्बल प्राणियोंके प्रति

चत्याचार नीतिशास्त्रके सर्वथा विहृत है। नीति-विहृद कार्योंके निरोधके लिये सुसम्भ्य मानव उमाजमें तरह-न्तरहकी विधि-व्यवस्थाएँ और आईन-कानून तथा लौकिक धर्मशास्त्र-समूह प्रचलित हैं। जीव आत्मविस्तृत होकर भले-बुरेके ज्ञानसे रहित होकर इन नीतियोंका उल्लंघन करते हैं। इससे सम्भसमाजमें विश्रृंखलता फैलती है। किसी कृत्रिम उपाय द्वारा हिंसावृत्तिका निरोध नहीं किया जा सकता है। उसका निरोध तो एक मात्र हरिसेवा द्वारा ही हो सकता है।

वैष्णव और अवैष्णव नीतियोंमें अन्तर

हिंसा करनेसे पाप लगता है। पापी व्यक्ति अरान्ति भोग करता है। इसलिये अवैष्णवोंको हिंसा करना उचित नहीं है। वैष्णव किसी भी प्राणीके प्रति हिंसा नहीं करते। जैसे बाँझ लोकों पुत्र दैदा नहीं होता और जैसे जलमें दूध नहीं निकलता, उसी प्रकार वैष्णव व्यक्तिमें हिंसाका होना असंभव है। समाजके कल्याणके लिये धर्म-शास्त्र और नीति-विशेषज्ञोंने 'उपकारके बदले उपकार और हिंसाके बदले हिंसाकी' नीति बत्तीनेकी अनुमति दी है। परन्तु उदार वृद्धिवाले वैष्णवोंकी शिक्षा यह है कि वैष्णवके प्रति हिंसा किये जाने पर भी वैष्णवजन उसे चुपचाप सह लेंगे।

दिग्विजयी परिषद्के प्रति जीवगोस्वामीकी अहिंसा-नीति

जिस समय अपनी जड़ पाण्डित्य-प्रतिभाके आद्यकारमें मत्त होकर दिग्विजयी परिषद्ने परम संत श्रीहृषि और श्रीसनातनसे जयपत्र लिखनेको कह कर वैष्णव-धर्मकी हिंसा की थी, उस समय आदर्श चरित्र उन दोनों गोस्वामियोंने अस्तान मुख से—हँसते-हँसते जयपत्र लिख दिया था। यही है वैष्णवोंकी अकृत-द्रोहिताका आश्र्व। पुनः जब जीवगोस्वामीने अपने गुरु-हिंसक वैष्णव-विद्वेषी दिग्विजयी परिषद्के प्रति दया-परवश होकर अपनी असामान्य अहिंसा-वृत्ति

का आदर्श दिखलाया था—उसकी बोलतीको बन्द कर उसे आगे वैष्णवापराध न करनेकी शिक्षा दी थी, उस समय श्रीजीव गोस्वामीके कहणापूर्ण हृदयसे हिंसाका दोष कृतक न गया था।

रामचन्द्रखाँके प्रति महात्मा हरिदास ठाकुरकी अकृतद्रोहिता

जिस समय रामचन्द्र खाँ नामक एक धनी विप्रने श्रीहरिदास ठाकुरकी रुयातिसे जल-भुन कर उनके प्रति हिंसावृत्तिका अवलम्बन किया—एक नव-यौवन सम्बन्ध परम सुन्दरी बेश्या द्वारा उनको पतित करना चाहा, उस समय महात्मा हरिदास ठाकुरके हृदयमें रामचन्द्र खाँके प्रति किसी प्रकारसे भी प्रतिहिंसाकी भावना उदित न हुई। यही है वैष्णवोंकी अकृत-द्रोहिताका आश्र्व।

श्रीमन् महाप्रभु और वासुदेवकी अहिंसा

जगाई मध्याईके प्रति भगवानकी कृपा, वेश्याके प्रति हरिदास ठाकुरकी दया और सार्वभौम भट्टाचार्यके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी कृपामें किसी प्रकारकी हिंसा नहीं है। वासुदेवकी समस्त पृथ्वीके लोगोंके पापोंके लिये स्वयं दण्ड प्रहण करनेकी प्रार्थना, ईशा मसीहका अपनेको मारनेवालोंके प्रति भी चमा और दया—यह सब भगवान और उनके प्रियजनोंकी अहिंसा नामक चित्तवृत्तिका ही परिचय है। इसीलिये श्री-चैतन्य महाप्रभुने 'तरोरपि सहिष्णुना' श्लोककी अवतारणा की है, जिसकी कृपणदास कविराज गोस्वामीने 'श्रीचैतन्यचरितामृत' में निम्नलिखित व्याख्या की है—

तह-सम रद्दिष्युता वैष्णव करिष्वे ।

भर्सना ताढ़ने काके किछु ना बलिष्वे ॥

काटिष्वेदै तह बेन किछु ना बोलय ।

शुकाइया मरे, तबु जल ना माँगय ॥

येह ये माँगये, तारे देय आपन धन ।

धर्म-वृद्धि सहे, आनेर करवे रचय ॥

तात्पर्य यह कि वैष्णवजनको बुझसे भी अधिक

सहिष्णु होना चाहिये; ठीक वैसे ही जैसे बुद्धको कटे जाने पर भी वह कुछ भी नहीं कहता; जलके अभावमें सुख जानेपर भी कभी जल नहीं माँगता; माँगने वालोंको अपना धन-फल, फल, जलावन आदि

देता है, धूमें द्वाया प्रदान करता है तथा वर्षसे रक्षा करता है।

ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

वैष्णव-सिद्धान्त-माला

नवप्रमेय-सिद्धान्त

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ५, संख्या २, पृष्ठ ३८ से आगे]

नवाँ अध्याय

विमल कृष्णभजन ही—मोक्ष प्राप्तिका उपाय है

प्र०—श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्तिरूप मोक्ष कैसे पाया जा सकता है?

उ०—विमल-कृष्ण-भजन द्वारा श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी प्राप्तिरूप मोक्ष पाया जा सकता है।

प्र०—विमल कृष्ण-भजन किसे कहते हैं?

उ०—मायाबद्ध जीव कृष्ण-सान्मुख्य लाभ करनेके लिये जो मल-रहित अर्थात् विशुद्ध कृष्णभजन करता है, उसे विमल कृष्णभजन कहते हैं।

प्र०—कृष्णजनके मल क्या-क्या हैं?

उ०—भोगकी वासना, निर्विशेष गति लाभ करनेकी वासना और सिद्धिकी वासना, ये तीनों भजनके मल हैं।

प्र०—भोग-वासना किसे कहते हैं?

उ०—ऐहिक इन्द्रिय-सुख-भोग, पारत्रिक स्वर्गादि भोग और शुष्क वैराग्यगत शान्ति-सुख—यह तीन प्रकारकी भोग वासना है।

प्र०—इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग करनेसे, परलोक में सुखजनक धर्मका त्याग करनेसे तथा वैराग्यका विसर्जन देनेसे शरीरकी रक्षा कैसे होगी? जगत्का कल्याण किस प्रकार साधित होगा? और विषया-सचिन्तन्य कष्ट दूर कैसे होगा?

उ०—इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग नहीं करना होगा,

जगत् कल्याणकारी धर्मका त्याग नहीं करना होगा तथा शान्तिजनक वैराग्यका भी आनादर नहीं करना होगा, बल्कि उन विषयोंमें भोगकी वासना और आसक्तिको त्याग करना होगा।

प्र०—यह भी कैसे सम्भव है?

उ०—जबतक वर्णात्रम धर्मका पालन किया जाय, तब तक समस्त प्रकारके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कर्मोंका आचरण करते रहना चाहिये। इन कर्मोंको इस प्रकारसे करो कि उनसे तुम्हारी कृष्णभक्तिके साक्षात् अनुशीलनमें सहायता मिले। उन्हें इस प्रकारसे न करो कि वे तुम्हारे कृष्णानुशीलनमें वाधक हों। जो कुछ भी अवसर मिले, उसमें हर समय साक्षात् अनुशीलनके कार्यों द्वारा भक्ति-वृत्तिको पुष्ट करते रहो; ऐसा होनेसे कर्म, धर्म और वैराग्य एक साथ मिलकर तुम्हारी परमोत्तमतिके साधक होंगे।

प्र०—जब समस्त जड़ीय कर्म ही चित् तस्यसे विलच्छए होते हैं, तब इनके द्वारा चित् स्वभावकी पुष्टि कैसे सम्भव है?

उ०—समस्त विषयोंमें, समस्त ज्ञानोंमें तथा समस्त विषय-सम्बन्धोंमें कृष्णभक्तिके भावको युक्त करो। श्रीविष्वद्वेषामें समस्त इन्द्रियोंको लगाओ;

कृष्णप्रसाद-सेवन, कृष्णका गुणानुकीर्तन, श्रीकृष्ण-चरणोंमें अर्पित तुलसी और चन्दन सूँघना, श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका अवलोकन, कृष्ण-सम्बन्धी वस्तु या व्यक्तिका स्पर्श और कृष्ण-दर्शन आदि क्रियाओंके द्वारा अपनी कृष्णानुरचित्को उद्दीपित करो। वीरे-वीरे तुम्हारे समस्त कर्म कृष्णको अर्पित होने पर वे भावोदयके पथमें वाधक न होकर सहायक हो पड़ेंगे।

प्र०—यदि शरीरकी रक्षाके लिये कुछ कर्म भी करता जाऊँ और साथ ही वासनाओंकी निवृत्ति भी करता रहूँ तो इन समाधि द्वारा कृष्णभक्ति उत्तम रूपमें साधित हो सकती है या नहीं?

उ०—नहीं। चित्तगत राग इन्द्रियोंके विषयोंसे सम्बन्धित होता है। यम, नियम और प्रत्याहार आदिके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंमें निवृत्त नहीं किया जा सकता है; क्योंकि रागको जबतक जह विषयोंसे अधिक रमणीय कोई दूसरी वस्तु न दिखलायी जाय, तबतक वह पूर्व विषयोंको छोड़ नहीं सकता। इसलिये यदि रागके प्रत्याहारके आगे कोई उत्तम विषय रखा जाय, तो राग उस उत्तम विषयका अवलम्बन कर तदगत हो पड़ता है और पूर्व विषयको महज ही छोड़ देता है। अतः पहले जिस प्रणालीको बतलाया गया है, वही विमल कृष्णभजन है।

प्र०—समल (अशुद्ध) कृष्णभजन किसे कहते हैं?

उ०—कर्मके प्रति आप्रह, योगदी चेष्टा और निर्विशेष मुक्तिकी कामनासे युक्त होकर जो कृष्णभजन होता है, उसे समल कृष्णभजन कहते हैं। इसके द्वारा श्रीकृष्णचरणामृत-लाभरूप मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती।

प्र०—विमल कृष्णभजनकी विधि संचेपमें बतलाईये।

उ०—शरीर और संसारयात्रा निर्वाहके लिये निष्पाप और न्याय-संगत जो भी कार्य करो, उसे कृष्णभक्तिमें सहायक—गौणी भक्तिके रूपमें करो। जब भी अवसर मिले कृष्णका साक्षात् अनुशीलन करो।

प्र०—साक्षात् अनुशीलन कितने प्रकारके हैं और

कौन कौन?

उ०—नौ प्रकारके हैं—(१) अवलोकन, (२) कीर्तन, (३) कृष्ण-स्मरण, (४) पादसेवन, (५) अर्चन, (६) वन्दन, (७) दास्य, (८) सत्य, (९) आत्मनिवेदन।

प्र०—इन अनुशीलनोंका क्या फल होता है?

उ०—भावोदय और अंतमें प्रेमोदय होता है।

प्र०—प्रेम क्या है?

उ०—उसे वाणियोंके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है; वह चिन्मय रस है; अतएव आस्वादनके द्वारा अनुभव करनेका प्रयत्न करो।

प्र०—साधनकालमें किन-किन विषयोंमें सतर्क रहनेकी आवश्यकता है?

उ०—विकर्म, अकर्म, कर्म-जड़ता, शुष्क-वैराग्य, शुष्क-ज्ञान और अपराधसे सतर्क रहना आवश्यक है।

प्र०—विकर्म कितने प्रकारके होते हैं और कौन-कौन?

उ०—विकर्म अनेक प्रकारके होते हैं। कुछ प्रत्यल पाप-ये हैं—(१) द्वेष, (२) निष्ठुरता, (३) क्रूरता, (४) जीव-हिसा, (५) पर-स्त्री-लोभ, (६) क्रोध, (७) पर-द्रव्यमें लोभ, (८) स्वार्थपरता, (९) गिर्धा, (१०) अवज्ञा, (११) गर्ब, (१२) चित्तविभ्रम, (१३) अपवित्रता, (१४) जगन्नाश-कार्य, (१५) दूसरोंका अपकार।

प्र०—अकर्म कौन-कौन से है?

उ०—नान्तिकता, अकृतज्ञता, और महजनोंकी सेवा का अभाव।

प्र०—कर्म किसे कहते हैं?

उ०—पुण्य-कर्मोंको कर्म कहते हैं; पुण्य-कर्म अनेक प्रकारके होते हैं, जिनमें प्रधान-प्रधान ये हैं—(१) परोपकार, (२) गुरुजनोंकी सेवा, (३) दान, (४) जगद्वृद्धि, (५) सत्य, (६) पवित्रता, (७) सरलता, (८) ज्ञान, (९) दया, (१०) अधिकारके अनुकूल कर्म, (११) श्रुक वैराग्य, (१२) अपवृप्तितत्व।

प्र०—कर्म-जड़ता किसे कहते हैं?

उ०—पुण्य कर्मोंके द्वारा जो जड़ीय अर्थ या

सुख प्राप्त होता है, उसे 'बहुत है'—मानकर चिद् उन्नतिके प्रयत्नसे विमुख होना ही कर्म जड़ता है।

प्र०—शुष्क-वैराग्य किसे कहते हैं ?

उ०—चेष्ट करके या अभ्यासके द्वारा जो वैराग्य होता है, उसे शुष्क या फलगु वैराग्य कहते हैं; भक्ति वृद्धि होने पर जो वैराग्य अपने-आप स्वयं उपस्थित होता है, उसे युक्त वैराग्य कहते हैं।

प्र०—शुष्क-ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—जो ज्ञान चिन् तत्त्वसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता, उसे शुष्क ज्ञान कहते हैं।

प्र०—अपराध कितने प्रकारके होते हैं ?

उ०—दो प्रकारके—सेवापराध और नामापराध ।

प्र०—भजन विशुद्ध कैसे होता है ?

उ०—अनासक्त भावसे संसारमें रहते हुए शुद्ध-ज्ञान प्राप्त कर सत्सङ्गमें अवण और कीर्तन करनेसे भजन विशुद्ध या विमल होता है।

दसवाँ अध्याय

शब्द, प्रत्यक्ष और अनुमान

प्र०—प्रमाण किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा सत्यका निरूपण किया जाता है।

प्र०—प्रमाण कितने हैं ?

उ०—तीन प्रकारके हैं।

प्र०—कौन-कौन ?

उ०—शब्द, प्रत्यक्ष और अनुमान।

प्र०—शब्द-प्रमाण किसे कहते हैं ?

उ०—स्वतःसिद्ध ज्ञानावतार-स्वरूप अखिल ब्रह्म ही शब्द-प्रमाण हैं। 'शब्द-प्रमाण'—सर्वोत्तम है। क्योंकि इस प्रमाणके बिना प्रकृतिसे अतीत तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती।

प्र०—क्या प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा ईश्वर और परलोक लक्षित नहीं होते ?

उ०—इन्द्रियों द्वारा अनुभूत समस्त प्रकारके ज्ञान—प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। प्रत्यक्षको देख कर अनुमित ज्ञानको अनुमान-प्रमाण कहते हैं। ये दोनों प्रमाण के बल सांसारिक ज्ञान ही प्रदान कर सकते हैं।

प्र०—ऐसा होनेसे परमार्थ-तत्त्वके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष और अनुमानको क्यों स्वीकार किया जाता है ?

उ०—शब्द-प्रमाण द्वारा जो कुछ उपलब्ध होता है, उसकी सिद्धिकार्यमें प्रत्यक्ष और अनुमान कुछ हद तक कार्य करते हैं। इसलिये जब ये शब्द-प्रमाण के अधीन रहकर कार्य करते हैं, तब उन्हें प्रमाण कोटिमें प्रहण किया जाता है।

— अंबिष्टुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद डाकुर

सदस्तु मे नाथ स भूरभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।

येनाहमेकोऽपि भवत्तात्मानो भूत्वा निषेदे तव पादपहलवम् ॥ (श्रीमद्भा०)

—हे नाथ ! मुझे इस ब्रह्म जन्ममें अथवा किसी पश्च-पश्ची आदि के जन्ममें भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमें से कोई एक दास होकर आपके चरण-कमलोंकी सेवा करूँ ।

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४, संख्या २, पृष्ठ ३६ से आगे]

(घ) श्रीजीव गोस्वामीके पिता श्रीअनुपम गोस्वामी—जो गौडीय वैष्णव-समाजमें 'श्रीवत्सलम' के नामसे भी परिचित है—का चरित्र भी यहाँ उल्लेख्य-योग्य है। कविराज गोस्वामीने "तार मध्ये रूप-सनातन—बड़ शास्त्र। अनुपम, जीव, राजेन्द्रादि-उपशास्त्र ॥" (चैत्यचरितामृत अ० १०८५)—वाक्यके द्वारा श्रीअनुपम—बल्लभको श्रीजीवपादके साथ श्रीचैतन्य-वृक्षकी उपशास्त्र कहा है। अनुपम श्रीरामचन्द्रके अनन्य उपासक थे। उनके दोनों बड़े भाई श्रीरूप-सनातनने उन्हें कृष्ण-भक्तिकी ओर सीच लानेके लिये बहुत ही चेष्टाएँ की थीं, परन्तु असफल रहे। वे अनुपमको किसी भी युक्ति द्वारा श्रीकृष्णका परमतत्त्व स्वीकार न करा सके। इतना होने पर भी श्रीकविराज गोस्वामीने गौडीय वैष्णवोंके बीच अनुपमको यही स्थान दिया है, जो जीव गोस्वामी को दिया है अर्थात् श्रीअनुपमकी गणना भी श्रीजीव गोस्वामीकी तरह उपशास्त्रामें की है। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें परतत्त्वके सम्बन्धमें श्रीगुरुरारी गुप्त और श्रीचैतन्यदेवके परस्पर कथनोपकथनका जैसा वर्णन है, ठीक जैसा ही वर्णन श्रीअनुपम और रूप-सनातनके परतत्त्व सम्बन्धी कथनोपकथनका भी (चै० च० अ० चतुर्थ परिच्छेदमें) है। प्रन्थ विस्तार और पुनराक्तिके भव्यसे इसे यहाँ उद्धृत नहीं किया गया।

(ङ) गौडीय वैष्णवोंके उपास्य पंचतत्त्वमें श्रीवास परिडत भी एक है। इनका जीवन चरित्र भी विशेष रूपसे विवेचनीय है।

प्रसङ्गवश श्रीभागवत् पत्रिकाके वर्ष ४, संख्या १२, पृष्ठ २७५ में सुन्दरानन्दके अचिन्त्यभेदाभेदवाद-में उद्धृत अंशसे (२) और (३) अनुच्छेदोंके प्रति पाठकों की हट्ठि आकर्षण कर रहा हूँ। उनमें उन्होंने कहा है—

"श्रीजीवपादका तत्त्व एकके सिवा दो नहीं है। तथा जीव और प्रकृतिको तत्त्व माननेसे अद्वयताकी हानि होती है।" अथव श्रीकविराज गोस्वामीने गौडीय वैष्णवोंके एकमात्र मालिक और श्रीमन्महा-प्रभुके नित्यसङ्गी श्रीस्वरूप गोस्वामीके 'कड़च' से "पञ्चतत्त्वमें कृष्णं भक्तरूप-स्वरूपम्। भक्तावतारं भक्तारुपं नमामि भक्तशक्तिरूपम् ॥"—इसका 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' आदिलीलाके पहले और सातवें परिच्छेदमें उद्धार कर अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें तत्त्वको केवल एक न मानकर पाँच प्रकारके तत्त्वोंका उल्लेख किया है। वे केवल पाँच प्रकारके तत्त्वोंका उल्लेख करके तत्त्वकी संख्या निर्द्दिरित नहीं कर दिये हैं; वहिं विविध प्रकारके तत्त्व माने हैं—

"स अस्वादिते तत्त्व विविध प्रकार ।"

(चै० च० अ० ७१५)

आगे और भी देखिये—

एक महाप्रभु, आर प्रभु दुह जन ।
दुह प्रभु सेवे महाप्रभुर चरण ॥
एह तीन तत्त्व,—'सव्वाराध्य' करि मानि ।
चतुर्थ ये भक्त-तत्त्व,—'आराधक' करि जानि ॥
श्रीवासादि यत कोटी कोटी भक्तगण ।
'शुद्धभक्त'—तत्त्व—यद्येता सवार गणन ॥

(चै० च० अ० ७१४।१६)

श्रीकविराज गोस्वामीके इन बचनों द्वारा तत्त्वका एकत्त्व किसी भी हालतमें प्रतिरोद्धर नहीं होता। यदि विद्याविनोद महाशयकी बत मानी जाती है, तो कविराज गोस्वामी और जीव गोस्वामीमें तत्त्वगत विरोध सिद्ध होता है। किन्तु क्या विद्याविनोद महाशय दोनों गोस्वामियोंके मतोंमें भेद या पार्थक्य

स्वीकार करेंगे ? सहजिन्यान्लोगोंने खुले शब्दोंमें ही श्रीजीवगोस्वामी और श्रीकविराज गोस्वामीके मतोंमें भेद-स्वीकार किया है। परन्तु हमलोग ऐसे निराधार और कपोल-कलित कुसिद्धान्तोंको माननेकेलिये प्रस्तुत नहीं हैं। वास्तवमें सुन्दरानन्द द्वारा लिखे गये श्रीजीवपादके नामसे आरोपित एकत्व प्रतिपादक समस्त वचनसमूह सम्पूर्ण भान्तिमूलक हैं। हम 'तत्त्व और तत्त्ववाद' प्रसङ्गमें इसकी विस्तृत आलोचना करेंगे।

श्रीकविकर्णपूर्ने श्रीवास परिषदतका—जो पञ्चसत्त्व-के अन्तर्गत एक तत्त्व है—भक्त-अेष्ट नारदके रूपमें उल्लेख किया है—“श्रीवासः परिषद्तो शीमान् यः पुरा नारदो मुनिः ।” (क) रथ-यात्राके प्रसङ्गमें हेरापञ्चमीके दिन श्रीवास परिषदतके साथ श्रीचैतन्य महाप्रभुका निम्नलिखित कथोपकथन यहाँ विवेचनीय है—

श्रीवास हाँसिया कहे,—सुन, दामोदर ।
आमार लक्ष्मीर देख, सम्पत्ति, विस्तर ॥
हृष्णदावनेर सम्पद् देख,—पुण्य-किमलम् ।
गिरिधातु शिखिपिछु—गुज्जाकलमय ॥
बृन्दावन देखिवारे गेला जगज्ञाय ।
शुभि लक्ष्मी-देवीर मने हैं आसोदाय ॥
एत सम्पत्ति छाड़ि केने गेला हृष्णदावन ।
ताँरे हाथ्य करिते लक्ष्मी करिला दावन ॥
“तीवार डाकुर, देख, एत सम्पत्ति छाड़ि” ।
पञ्च-फल-फूल-जोभे गेला पुण्यवादी ॥
एह कर्म करे कौहा विद्यर्थ-शिरोमणि ॥
लक्ष्मीर शयेते निज प्रभुरे देह ध्यानि ॥
एत बलि लक्ष्मीर सब दासीगणो ।
कटि-वस्त्रे वौधि आने प्रभुर निजगणे ॥
लक्ष्मीर चरणे आनि कराय प्रणति ।
घन दृष्ट लय, आर कराय मिनति ॥

रथेर ऊपर करे दृष्टेर ताइन ।

चोर-प्राय करे जगज्ञायेर सेवकगण ॥

सब नृत्यगण कहे,—जोह करि हाथ ।

कालि धानि दिव तीमार आगे जगज्ञाय ॥

सबे शान्त हजा लक्ष्मी वाय निज-धर ।

आमार लक्ष्मीर सम्पद्-वाक्य-आगोचर ॥

हुध औडि दधि सबे तीमार गोपीगणे ।

आमार डाकुराणो दैसे रथ-सिंहासने ॥

नाश्व-पक्षि शोवास करे परिहास ।

सुनि हाँसे महाप्रभुर यत निज दास ॥

प्रभु कहे,—श्रीवास तीमारे नारद स्वामाव ।

ऐश्वर्यमावे तीमारे, हृश्वर-प्रभाव ॥

इहों दामोदर-स्वरूप—शुद्ध-वज्रासी ।

ऐश्वर्य ना जाने इहों शुद्ध-प्रेमे भासि ॥ (क)

यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि श्रीवास परिषदत प्रत्येक गौड़ीय वैष्णवके उपास्य होते हुए भी श्रीमन्महाप्रभुके उल्लत उज्जलरस-प्रचारकी विरोधी भावनाओंका प्रदर्शन क्यों किये ? श्रीचैतन्यचरिता-भूत (आदेश्वराड ४।१७) में श्रीकविराज गोस्वामीने लिखा है—‘ऐश्वर्य ज्ञानेते सब जगन् भिक्षित । ऐश्वर्य-शिथित-प्रेमे नाहि मोर प्रीत ॥’—यही विचार गौड़ीय-वैष्णवोंका प्रधान वैशिष्ट्य है। परन्तु हेरापञ्चमीके दिन श्रीवास परिषदत श्रीलक्ष्मीजीके आपार ऐश्वर्य और प्रभावसे मुक्त होकर तथा उनके भावसंवित होकर उल्लत-उल्लवल रसाभिता गोपियोंके ऊपर अत्याचार होते देख कर बड़े आनन्दित हुए थे। वे केवल मन ही मन वैसा भाव पोपण किये हुए थे, ऐसी बात नहीं थी ; बल्कि उनके हृदयमें वह भाव इतना अधिक उमड़ पड़ा कि वे उसे हृदयके अन्दर छिपा रखनेमें असमर्थ हो गये। और धक्करूपमें श्रीमन्महाप्रभु और गदाधर आदिके निकट ब्यक्त कर दिये। श्रीकविराज गोस्वामीने इस

(क) शत्रुघ्नीमूर्च्छा बन्दोपाध्याय द्वारा संपादित, श्रीगोपेन्द्र भूषण सौरुपतीर्थ द्वारा अभिका कालनासे चैतन्याध्य ४२६ में प्रकाशित 'श्रीगोस्वामी' शब्दोंपिका द्वितीय संस्करण, श्लोक ६०, पृष्ठ २७ से।

प्रसंगका जैसा वर्णन किया है, उससे उक्त बातें स्पष्ट प्रतीत होती हैं। अतएव केवल मतभेद होनेसे ही उनको गौड़ीय सम्प्रदायमें अलग कर देना सुसंगत नहीं जान पड़ता है। विशेषतः जबतक मूल वचन सम्बन्धी भेद उपस्थित न हो जाय, तब तक साम्प्रदायिक भेद स्वीकार नहीं किया जा सकता है। परतत्त्वका विचार-भेद ही सम्प्रदाय-भेदका कारण माना जाता है।

(च) इसके अतिरिक्त मायावादी या अद्वैतवादी सम्प्रदायमें भी परस्पर मतभेद देखा जाता है। परन्तु मतभेद होने पर भी विद्वके समस्त दार्शनिकोंने उन सत्यको बौद्ध या प्रच्छन्न बौद्ध अथवा शक्ति-सम्प्रदायके अन्तर्गत माना है। आचार्य शक्ति अद्वैतवाद स्थापन किये हैं। सूक्ष्म दार्शनिक उनको केवलाद्वैतवादी मायावादी, मिथ्यावादी और शून्यवादी आदि विभिन्न नामोंसे पुकारते हैं। आचार्य शक्ति अपने को गौड़ीय-दिके शिष्यका शिष्य स्वीकार करके भी गौड़ीय-दिके शून्यवादसे मिलता-जुलता हुआ अपना एक अलग मत भाषण किया है। यथानि शक्तिवाचार्य का उनके दादागुणके साथ वेदोंकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें कुछ मतभेद है तथा पि विद्वन् समाजमें ये दोनों एक ही सम्प्रदायके अन्तर्गत माने जाते हैं। इसीलिये इनको बौद्ध या प्रच्छन्न बौद्ध कहा जाता है।

(छ) आचार्य शक्ति अपनी पारिषद्य-प्रतिभाके प्रभावसे अनेक शिष्य लिये थे। इनमें पद्मपाद, सुरेश्वर, हन्तामलक और तोटकाचार्य सर्वश्रेष्ठान् शिष्य थे। इन चार प्रधान शिष्योंमें पद्मपाद और सुरेश्वर अद्वैतवाद चिन्ताधारके प्रकारण विद्वान् हुए हैं। सुरेश्वरका ही पूर्व नाम मण्डन मित्र था। हन्तामलक और तोटकाचार्यकी विद्वतःका कोई वैसा परिचय नहीं पाया जाता। चाल्तवमें पद्मपाद और सुरेश्वर ही शक्तिवाचार्यके मायावादके प्रधान उत्तराधिकारी हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी दोनोंके मतोंमें

बहुत ही अंतर है। वही कारण है कि शक्तिवाचार्यके बाद मायावादी सम्प्रदायमें दो शास्त्रान् दिव्यार्दि पड़ती हैं—एक पद्मपादकी शास्त्रा और दूसरी सुरेश्वराचार्यकी शास्त्रा। पद्मपादाचार्य और सुरेश्वराचार्यकी व्याख्यात्रोंमें बहुत ही अन्तर देखा जाता है। जैसे—शक्ति ने ‘अध्यास’ की संज्ञा दी है—‘स्मृतिरूपः परत्र पूर्वद्वायभासः।’ अब इस वाचकी पद्मपादाचार्य की ओर भाषती टीकाकार वाचस्पति भित्रकी व्याख्यात्रोंमें वहा अन्तर है। ॥

(ज) पद्मपाद, वाचस्पति भित्र, सुरेश्वर आदि मायावादी आचार्योंमें परस्पर मतभेद है—इस बातको स्थैर मायावादी भी स्वीकार करते हैं। परन्तु वैसा मतभेद होने पर भी वे सभी अद्वैतवादी शक्ति सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं—इसमें दो मत नहीं हैं। नीचे कतिपय मतभेदोंके उदाहरण दिये जाते हैं।

शंकरके ‘अध्यास’ या ‘अवभास’ को लेकर प्रकाशात्म यति और अमलानन्दमें भी प्रचुर मतभेद देखा जाता है। आचार्यने अध्यासकी जो संज्ञा दी है वह इस प्रकार है—‘स्मृतिरूपः परत्र पूर्वद्वायभासः।’ किन्तु अमलानन्दने उक्त संज्ञा पर आपत्ति की है। उन्होंने ‘अध्यास’ की संज्ञा इस प्रकार निरूपण की है—‘स्मृतिरूपः यविशिष्ट अवभासत्वम्।’ शंकरके साक्षात् शिष्य होकर भी पद्मपादका अपने गुरुदेवमें इस विषयमें मतभेद है। उन्होंने ‘अध्यास’ की संज्ञा ऐसी दी है—‘स्मृते हपमित्र हपमस्य, न पुनः स्मृहिरेत्र पूर्व प्रमाणविषय विशेषस्य तथा अनवभासकत्वात्।’ अतएव आचार्य शंकर और पद्मपादकी संज्ञाएँ एक नहीं हैं।

(झ) इसके अतिरिक्त मिथ्यात्वके लघुणके सम्बन्धमें भी मायावादी आचार्योंमें परस्पर मतभेद है। पद्मपाद कहते हैं—‘सदसद् भिन्नत्वं मिथ्यात्वम्।’ किन्तु प्रकाशात्मयतिका कहना उससे कुछ भिन्न ही है—‘ज्ञान निवर्त्यत्वम् मिथ्यात्वम्।’ अर्थात् जो ज्ञान द्वारा निवर्तित हो जाता है अर्थात् नहीं रहता है, उसे ‘मिथ्या’ कहते हैं। मधुसूदन सरस्वती पादने

* स्वामी प्रशानामन्त्र सरस्वती कृत ‘वेदान्त-दशभेद इतिहास’ भाग १, पृष्ठ २५६, पंक्ति ६। १२ से।

अद्वैतसिद्धिमें मिथ्यात्वके पाँच प्रकारके लक्षण बतलाएँ हैं। अतएव प्रधान-प्रधान अद्वैतवादियोंमें परस्पर मतभेद है—इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। तथा पि उनमेंसे कोइं भी शंकर सम्प्रदाय से भिन्न नहीं हो पड़े हैं।

(ब) वाच्स्तवमें अद्वैतवादी आचार्योंमें मतभेद तक ही सीमित नहीं है, अविकल्प उनलोगोंमें एक दूसरेका खण्डन भी स्पष्टरूपसे देखा जाता है। प्रकाशात्मयतिने वाचस्पति मिथ्रके अविच्छिन्नवादका खण्डन किया है। वाचस्पति मिथ्र जीव और ईश्वर दोनोंको ब्रह्मका प्रतिविन्द्व स्थापन किये हैं। परन्तु प्रकाशात्मयति उनके मतका खण्डन करते हुए कहते हैं कि—अखल वस्तु का प्रतिविन्द्व असंभव है। आकाशका प्रतिविन्द्व अयुक्ति-संगत है। अतएव साध्यव (हस्त-पदादि युक्त) ईश्वर विन्द्वस्थानीय हैं और जीव उसके प्रतिविन्द्व हैं।

श्रीजीवगोस्यामीने इन अद्वैतवादी आचार्योंकी सारी युक्तियोंका खण्डन कर जीवको ब्रह्मका तटस्थ शक्तिस्वरूप विभिन्नांश स्थापित किया है।

(ट) ब्रह्मके कर्तृत्वको लेकर मायावादियोंमें परस्पर बहुत ही विवेद होते आये हैं। 'तदैतत मोऽकामयत तदात्मानं स्वयमकुरुत इति'—इस उद्दिष्ट भन्नमें ब्रह्मका कर्तृत्व स्वीकार किया गया है। ऐसा होने पर ब्रह्म निपिक्त्य निर्दिशेष या निर्धिकार कैसे हुआ? ब्रह्म देख रहे हैं, कामना कर रहे हैं, स्वयं कर रहे हैं—इत्यादि उपनिषद् वाणियोंको उड़ा देने (अस्वीकार करने) में असमर्थ होकर उनको पूर्व पक्षके रूपमें प्रहसन करके उनका सामंजस्य द्रिखलानेका प्रयास किया है। परन्तु ऐसा करनेमें

भी असफल होने से आपसमें ही एक दूसरेका खण्डन किया है। प्रधान पश्चिम असलाननद ही इन स्वरूप-विच्छिन्नकारियोंमें प्रधान है—यद्यपि बहुतोंके मत इनमें भी भिन्न हैं।

किसीने कर्मको वद्ध-ज्ञानका साधन बतलाया है, तो किसीने उसका खण्डन कर नित्यकर्मोंको ज्ञानका अंग स्वीकार किया है। ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके मतभेद लक्ष्य किये जाने पर भी वे सभी एक शंकर-सम्प्रदायके ही आचार्य माने गये हैं। इसे 'वाद' के खेलने भी स्वीकार किया है। 'गौडीयार तीन ठाकुर' की आठवीं माघुरीके २२३ पृष्ठ में 'शंकराचार्य का मतवाद'—शीर्षकमें उन्होंने लिखा है—जीवके सम्बन्धमें खण्डन मिथ्र—प्रतिविन्द्ववादी थे, वाचस्पति मिथ्र—अपच्छेदवादी थे और सुरेश्वराचार्य—आभासवादी थे। इन अतएव उनमें परस्पर मतभेद मिछू है। परन्तु ऐसा होने पर भी वे सभी शंकर सम्प्रदायी मायावादी या अद्वैतवादी हैं। इस प्रबंध के इस पद्धति सिद्धान्तमें अद्वैतवाद या मायावादकी विस्तृत समालोचना अनावश्यक होनेके कारण मैंने केवल उनके मतभेदका ही उल्लेख किया है। अचिन्यभेदभेद सिद्धान्तके वैशिष्ट्यके प्रकृतगमें इसकी विस्तृत अलोचना की जायगी। पूर्णप्रब्रह्म मत्वाचार्य ने ही मायावाद या अद्वैतवादका विनाश किया है। उनकी अकाट्य युक्तियोंको महण करके ही श्रीजीव पादने अचिन्यमेदामेदवादकी श्रेष्ठता स्थापित की है। गौडीय-सम्प्रदायका मवानुगत होनेका यह भी एक प्रधान कारण है।

(क्रमशः)

—ईविष्णुपाद श्रीमद्भिक्षुप्रज्ञान केशव महाराज

* सुरेश्वराचार्यका पूर्वनाम 'संदन मिथ्र' था। यहाँ पर विचारिनोद महाशयने संदन मिथ्र और सुरेश्वरके अलग-अलग दो मतोंका उल्लेख कर किस सुरेश्वरको अभासवादी बतलाया है—समझ नहीं पड़ता।

श्रीश्रीजयन्ती

[लंखा ४, पृष्ठ ४६ से आगे]

और जलसे भरे हुए बादल मण्ड-मण्ड गर्जने लगे। ऐसे-ऐसे शुभ लक्षणोंसे युक्त सुहायने समयमें देव-हृषिणी देवकीके गर्भसे सर्वान्तर्यामी भगवान् उसी प्रकारसे आविभूत हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलह कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमा उदित हुए हों। उन कमल-नवन, चार सुन्दर हाथोंमें शंख-चक्र-गदा और कमल धारण किये हुए, श्रीवत्सके चिह्नसे अद्वित वक्षःस्थल बाले, गलेमें, कीसुभमरणि शोभित, पीताम्बर धारण किये हुए, सुन्दर श्यामल वर्णबाले, बहुमूल्य वैदूर्य-मणिके किरीट और कुण्डल पहने हुए, तथा समस्त आभूषणोंसे सुशोभित अत्यन्त अद्वित बालकको देखा कर श्रीवसुदेव महाराजका हृदय आनन्दसे भर उठा। उनका रोम-रोम प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने श्रीकृष्णके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें उसी समय ब्राह्मणोंको दस हजार गोंधें मन ही मन दान कर दी। भगवान् श्रीकृष्ण उस समय अपनी अङ्गफानिसे सुतिका गृहको जगमग कर रहे थे। वसुदेव जी इस प्रकार भगवान्का प्रभाव देखकर उनके चरणोंमें अपना मस्तक झुका दिये तथा हाथ जोड़कर निर्भय हो उनकी स्तुति करने लगे।

अनन्तर पुत्र श्रीकृष्णमें पुरुषोत्तम भगवान्के समस्त लक्षणोंको देखकर कंससे दूरी हुई देवकी उनकी स्तुति करते २ कंससे उड़ार पानेके लिये प्रार्थना की तथा भगवान्से उनका चतुर्भुज रूप छिपा लेनेके लिये अनुरोध किया। उन लोगोंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् वडे सन्तुष्ट हुए और उनसे उनके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बतलाकर उनके देखते-नेत्रते ही चतुर्भुज रूपको छोड़ कर एक साधारण शिशुका रूप धारण कर लिये।

तदनन्तर जब वसुदेवजीने भगवान्की प्रेरणासे

सुतिका गृहसे पुत्रको लेकर बाहर निकलनेकी इच्छा की, उसी समय जन्म-रहिता भगवत्-शक्ति योगमायाने भी नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे गोकुलमें जन्म लिया। उन्होंने द्वारपालों और पुरवालियोंको गंभीर निद्रामें सुला दिया। और ऐसी व्यवस्था कर दी कि वसुदेव-जी श्रीकृष्णको गोदमें लेकर ज्योंही निकले, समस्त ताले, लोटकी जंजीरें तथा दरवाजे अपने-आप खुल गये। उस समय बादल जोरेसे गरजने लगे, बाँधीके साथ वडे बेगसे वर्षा होने लगी। शेष रूपी भगवान् अनन्तदेव अपने सहस्र फलांसे वर्षीके जलसे भगवान् श्रीकृष्णको बचाने हुए उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उन दिनों बार-बार वर्षा होनेके कारण अगुनाका पानी खूब बढ़ गया था। अत्यन्त चक्कल और गंभीर लोत, तथा सैकड़ों भैंवरोंके कारण जमुनाजी वही भयझर हो रही थी। परन्तु उन्होंने वसुदेवजीको ठीक बैंस ही मार्ग दे दिया, जिस प्रकार सन्दीपनी मुनिके पुत्रोंके अनुसंधानमें प्रवृत्त श्रीकृष्णको समुद्रने मार्ग दिया था।

वसुदेवजीने गोकुल पहुँच कर देखा कि सबके सब गोप गंभीर नीदमें सो रहे हैं। उन्होंने यशोदा-जीकी शश्या पर अपने पुत्रको सुला दिया और उनकी नवजात कन्याको लेकर कारागृहमें लौट आये। यहाँ पहुँच कर उन्होंने उस कन्याको देवकीकी शश्या पर सुला दिया और पहलेकी तरह पैरोंमें बेड़ियाँ पहन कर कारागारमें बन्द हो गये। उधर यशोदादेवी घोर निद्रा और अधिक परिअम्बके कारण (योगमायाके प्रभावसे) यह न जान सकी कि नवजात शिशु पुत्र है या कन्या। वे केवल मात्र यह जान सकी कि उनको कोई सन्तान पैदा हुई है।

अब विचारणीय यह है कि भगवान् अवतार

लेकर देवकीके गर्भमें कैसे आविभूत हुए ? देखा गया कि भगवान् पहले विष्णुकी तरह चतुर्भुज मूर्तिमें प्रकट हुए और पीछे अपना प्रभाव विस्तार कर साधारण शिशु बन गये ।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि कृष्ण और विष्णु तत्त्वोंमें परस्पर क्या सम्बन्ध है ? श्रीविष्णुगयत्रके प्रथम स्कन्धमें भगवद् अवतारोंका उल्लेख करनेके पश्चात् श्रीकृष्णको स्वयं भगवान् और उन समस्त अवतारोंको श्रीकृष्णका अंश या कला कहा गया है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

इन्द्रादिव्याकुलं लोकं शृणुन्ति युगे-युगे ॥

(श्रीमद्भा० ११२.२८)

श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान्—अवतारी हैं और सब अवतार उन्हीं पुरुषोंका श्रीकृष्णके अंश या कला हैं । जब दैत्योंके अत्याचारसे लोग व्याकुल हो जाते हैं, उस समय अवतारगण अवतीर्ण हो कर उनकी रक्षा करते हैं । कृष्ण केवल अवतार मात्र ही नहीं है, अधिकन्तु वे अवतारी तत्त्व भी हैं । इसका प्रमाण अद्याके द्वारा किये गये विस्तृत स्तवमें पाया जाता है । गोवत्स हरणके पश्चात् कृष्णकी कृपासे जब वे कृष्ण तत्त्वको जान पाते हैं, तब वे (मा० १०।१४।१४) कहते हैं—

मारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना—
मात्मास्यधीशाखिकलोक साक्षी ।
नारायणोऽहं नरभूजलायना—
तत्त्वापि सत्यं न तर्चेव मात्मा ॥

[हे प्रभो ! आप समस्त लोकोंके साक्षी हैं । जब आप समस्त जीवोंके आत्मा अर्द्धान् अत्यन्त पिण्ड हैं, तब क्या आप मेरे पिता नारायण नहीं हैं ? वे आपके अङ्ग अर्थात् अंश हैं । आपके अंशरूप कारण-शिशायी विष्णु, क्षीरोदशायी विष्णु और गर्भादशायी विष्णु—इनमें से कोई भी मायाके अर्थात् नहीं है; ये सभी मायाधीश, मायातीत और परम सत्य हैं । ये अवतार-समूह आपके अङ्ग हैं और आप अङ्गी हैं ।]

श्रीचैतन्यचरितामृत, आदि लीला, द्वितीय परिच्छेदमें इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है—
अतएव ब्रह्मवास्ये परव्योम-नारायण ।

तेहों कृष्णोर्प्रकाश-पद तत्त्व-विवरण ॥६८॥

(यदि कोई ऐसा कहे कि कृष्ण ही नारायणके अवतार हैं, तो ऐसा कहना भूल है । इसलिये कहते हैं)—

अवतारी नारायण, कृष्ण अवतार ।

तेह चतुर्भुज, इंह मनुष्य आकाश ॥६९॥

यह मते नानारूप करे पूर्वपद ।

ताहारे निर्मिते भागवत-पद दत्त ॥७०॥

पूर्वपद कहे, तोमार भाल त व्याख्यान ।

परस्परमें नारायण स्वयं भगवान् ॥७१॥

तेह आसि वृष्ण रूपे करेन अवतार ।

यह अर्थ इसोके देखि कि आर विचार ॥७२॥

उत्तर—

तारे कहे, ऐसे कर कुतुकासुमान ।

शारुदिवहृष्टये कमु ना हय प्रमाण ॥७३॥

अनुवादमनुकृता तु न विधेयसुदीरयेत् ।

न ल्लाभन्यासपदं किञ्चत् कुवचित् प्रतितिष्ठति ॥७४॥

(आलंकारिक न्याय)

अर्थात्—

अनुवाद ना कहिया ना कहि विधेय ।

आगे अनुवाद कहि पश्चाद्विधेय ॥७३॥

विधेय कहिये तारे, ये वस्तु अज्ञात ।

अनुवाद कहि तारे ये इह जात गढ़ि ॥

[आलंकारिक मतानुसार अपरिज्ञात विषयको 'विधेय' और परिज्ञात वस्तुको 'अनुवाद' या 'उद्देश्य' कहते हैं । 'अनुवाद' को कहे जिन पहले 'विषय' को कहनेसे वाक्यकी प्रतिष्ठा नहीं होती ('एतेचांश कला: पुंसः'-स्लोकमें)]—

‘एते’ शब्द अवतारे आगे अनुवाद ।

पुरुषेर अंश पात्रे विधेय संवाद ॥८८॥

अतएव कृष्ण-शब्द आगे अनुवाद ।

‘सत्यं भगवत्ता’ पात्रे विधेय संवाद ॥८९॥

(यहाँ ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्’ में)

कृष्णेर स्वयं भगवत्ता—इहा है ल साध्य ।

स्वयं भगवानेर कृष्णन्व है ज वाद्य ॥८३॥

जो लोग ऐसा कहते हैं कि कृष्ण नारायणके अवतार हैं, वे 'चतुर्गुद' और 'विदेशके सम्बन्धमें भूल करते हैं—इसे विखला कर, 'कृष्ण' ही अवतारी तत्व हैं और सब अवतार उनके अंश हैं—इसे भली-भाँति स्थापित किया गया ।

वद्वासंहिता (५१) में भी पाते हैं—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दः विग्रहः ।

अनादिरात्रि गोविन्दः सर्वं काश्यकारणम् ॥

[सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्ण ही परमेश्वर तत्त्व हैं । वे स्वयं अनादि हैं । उनका कोई मूल नहीं है, परन्तु वे सबके मूल-अर्थात् आदि हैं—समस्त कारणोंके मूल कारण हैं ।]

'स्वयं भगवान् कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय ।

परम ईश्वर कृष्ण, सर्वशास्त्रे कय ॥' १०६ ॥

अब विचारणीय यह है कि कंसके बन्दीगृहमें जो तत्त्व आविभूत हुए हैं, वे विष्णु-नारायण हैं या श्रीकृष्ण हैं ? स्वरूपगत तत्त्वके विचारसे दोनों ही 'सच्चिदानन्द विग्रह' हैं । 'श्रीश्रीभक्तिरसामृसिन्धु' (पूर्व लहरी २।५८) में देखा जाता है—

सिद्धान्तस्तस्तवभेदेऽपि श्रीशकृष्णस्तरूपयोः ।

रसेनोत्कृष्टयते कृष्णरूपमेषा इस्तिथितः ॥

[सिद्धान्तके विचारसे विष्णु-तत्त्व और कृष्ण-तत्त्व अभिन्न हैं, किन्तु उसके तारतम्य विचारसे श्रीकृष्णरूपकी ही अधिक उत्कर्पता है ।] जहाँ अवतारी और अवतार विचारके अनुसार अवतारको अवतारीका 'अंश' कहा जाता है, वहाँ 'अंश' कहनेसे खराड या जीवकी तरह 'विभिन्नांश' का बोध नहीं होता । उससे स्वांश या पूर्णतत्त्वका ही बोध होता है । उपनिषदमें कहा गया है—

"पूर्णमिद्" पूर्णमदः पूर्णात् पूर्णमुदृश्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥"

हम भगवान्के जन्मके समय देखते हैं कि वे चतु-

र्मज के रूपमें आविभूत होते हैं । पश्चात् वसुदेव और देवकीको अपना तत्त्व अतलाकर द्विभुज कृष्णके रूपमें परिलक्षित होते हैं । इससे स्पष्ट ही जाना जाता है कि चतुर्मुर्ज और द्विभुज दोनों रूप स्वरूपतः एक ही तत्त्व हैं; केवल वैभव प्रकाशमें कुछ भिन्न-भिन्न भाव देखे जाते हैं:—

वैभव प्रकाश जैके देवकी तनुज ।

द्विभुज स्वरूप कमु कमु हन चतुर्मुर्ज ॥

(च० च, म ० २० १०५)

'स्वयंरूप' कहनेसे एक मात्र नन्दनन्दन कृष्णका ही बोध होता है—

स्वयंकपे—एक 'कृष्ण' घने गोपमूर्ति ॥१६॥

स्वयंरूपेर गोपवेश, गोप अभिमान ।

वासुदेवेर लक्ष्मिवेश आदि-इतिहास ज्ञान ॥१७॥

अतएव वे पहले विष्णुके रूपमें अवतीर्ण हुए थे—ऐसी आशांकाकी जगह नहीं है । क्योंकि वैभव प्रकाशमें वे चतुर्मुर्ज मृति भी हो सकते हैं ।

परन्तु यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि कृष्णके साथ विष्णु-नारायणके अवतीर्ण हीने में बाधा नहीं है; बल्कि असुर आदि वध-कार्य विष्णुका ही है । चैतन्यचरितामृत (आ० ४८-१३) में इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

'स्वयं भगवानेर कमं नहे भाग्नरण ।

स्थितिकर्ता विष्णु करेन जगत् पालन ॥

किन्तु कृष्णेर जेह हय अवतार-काल ।

भाइ-हरणकाल ताते हर्षल मिशाल ॥

पूर्णं भगवान् अवतरे येह काले ।

आर सर अवतार ताते आसि मिले ॥

नारायण, चतुर्भुज, मत्स्यायतार ।

युग-मन्दन्तरावतार, यत आसि आर ॥

सरे आसि कृष्ण आङे हय अवतीर्ण ।

ऐसे अवतरे कृष्ण भगवान् पर्ण ॥

अतएव विष्णु तत्त्वन कृष्णेर शरीरे ।

विष्णुद्वारे कृष्ण करे असुर संहारे ॥

अब यह देखा गया कि अवतारी कृष्णके साथ विष्णु आदि भगवत् तत्त्व भी अपने-अपने कार्योंको करनेके उद्देश्यसे अवतीर्ण होते हैं; जैसे श्रीमद्भागवत् दृश्यम् स्फूर्तिके प्रथम अध्यायमें देखिये—

भूमिट्टै सन्तप्त्याज-दैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभासेण ब्रह्माण्यं शरणं यतो ॥१५॥
ब्रह्मा तुष्प धार्यात्म सह देवैस्त्वया सह ।
जगाम सत्विनवमहतीर्ण शीरपयोनिधेः ॥१६॥
तत्र गत्वा जगत्तार्थं देवदेवं वृथाकदिष् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्ये समाहितः ॥१७॥
(दैत्याणी)—

वसुदेव गृहे साक्षात्प्रगतान् पुरुषः परः ।
जनित्यते तत्प्रियात्मं सम्भवन्तु सुरेन्द्रियः ॥२४॥
... भवद्विरंशैव दुष्प्रपञ्चयतास् ॥२५॥
अग्रतो भविता देवो होते प्रियचिकीर्ण्या ॥२६॥
विष्णोर्मार्या भगवती यथा संमोहितं जगत् ।
आदिष्टा प्रभुनांशेन कार्यर्थं सम्भाविष्यति ॥२७॥

अथौत्— उस समय लालों दैत्योंके दलने कपट राजा-ओंका रूप धारण कर अपने भारसे पुरुषीको आक्रान्त कर रखा था । उससे रक्षापानेके लिये वे गौं के बेशमें ब्रह्मानीकी शरणमें गयों । ब्रह्मानी उनकी दुःख-गाथा सुनकर त्रिलोचन शंभु और लवगंके अन्यान्य प्रमुख देव-ताओंको तथा गौंके रूपमें आवी हुई पुरुषीको साथ लेकर जीरसागरके तट पर गए । वहाँ पहुँच कर उनलोगोंने ‘पुरुषसूक्त’ मंत्रसे परमपुरुष जगत्ताथकी सुति की । उससे दैत्याणी हुई—‘वसुदेवजीके घर परम पुरुष साक्षान् भगवान् जन्म लेंगे । उनकी सेवाके लिये देवाङ्गमाणैः जन्म प्रहरण करें । आपलोग (देवगण) भी अपने-अपने अशोके साथ यदुकूलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें सहयोग दें । सहस्रवदन भगवान् अनन्तदेव भी, जो वासुदेव कृष्णकी कला हैं, भगवान् के प्रिय कार्य करने के लिये उनसे पहले ही अवतीर्ण होंगे । भगवान् विष्णुकी मायाशक्ति भगवती देवी भी-जिनके द्वारा सारा जगत् मोहित है—प्रभुकी

आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेके लिये अपने अंशसे अवतार लेंगी ।

इसलिये विष्णुनारायण भी कृष्णके आङ्गीभूत तत्त्वके रूपमें श्रीकृष्णके साथ आविभूत होते हैं । और उनके द्वारा ही पृथ्वीका भार हरण कार्य साधित होता है । परन्तु स्वयंरूप-कृष्णका इससे पृथक् दूसरा कार्य होता है । चैतन्यचरितामृत आदि, ४ थे अध्याय में कहते हैं—

वानुवह्निकम् पृथ असुर-मारण ।
जे लागि अवतार, कहि से भूल कारण ॥१४॥
प्रेम रस-निर्यास करिते आस्वादन ।
रामामार्म भक्तिजोके करिते प्रचारण ॥१५॥
रसिकशेषर कृष्ण परम करण ।
पृथ दुह देतु हैते हृष्टार उद्गम ॥१६॥
पृथवर्य ज्ञानेते सब जगत् मिथिल ।
देवशर्वं शिखिल-नेमे नाहि मोर प्रीत ॥१७॥
आत्मे हृश्वर माने, आपनाके हीन ।
तार प्रेमे वश आमि ना हृदै अधीन ॥१८॥
आपनाके वड माने आमारे सम-हीन ।
सेह भावे हृदै आमि ताहार अधीन ॥१९॥
माता मोरे पुज भावे करेन बन्दन ।
अति हीन-ज्ञाने करे लालन-पालन ॥२०॥
सखा शुद्धमरुपे करे हृष्णे आरोहण ।
तमि कौन वड लोक,—तुमि आमि सम ॥२१॥
प्रिया यदि मान करे मर्मन ।
वेनस्तुति हैते हरे सेह मोर मन ॥२२॥
पृथ शुद्धा भक्ति लवा करिमु अवतार ।
करिव विविधविविध अद्वृत विहार ॥२३॥
पृथ सब रस निर्यास दृष्टिं आस्वाद ।
पृथ हारे करिव मर्य भक्तोरे प्रसाद ॥२४॥
बजेर निमंल राग सुनि भक्तगण ।
रागमार्म भजे जेत द्वादि धर्म कर्म ॥२५॥
अनुब्रह्म भक्तानां मानुषं देहमाधितः ।
भजते लादशोः कीड़ा या श्रुत्वा तप्तपरो भवेत् ॥२६॥

भक्तजनोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये भागवानने नर-देह प्रकट कर जिस रास-लीलाका प्रकाश किया है, उसका अवण करके तदभिकारी भक्तजन उस लीलाके प्रति आसक्त होकर उस क्रीड़ाका भजन करेंगे। परन्तु इस लीलाका आचरण न करेंगे। यदि कोई ऐसा आचरण करे, तो उसे अनन्त नरक भोग करना पड़ेगा—

नैतत् समाचरेऽजातु मनसपि हातीश्वरः ।
विमर्शयत्याचरणं नौद्यायथारुद्रोऽविवजं विषम् ॥

(श्रीभगवा० १०।३।३।)

[जिन लोगोंमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिए, शरीरसे करना तो दूर रहा। यदि मुख्यतावश कोई ऐसा कर वैठे, तो उसका नाश हो जाता है। शंकरजीने समुद्र-मन्थनसे निकले हुए विषका पान किया था; परन्तु उनकी देखा-देखी दूसरा कोई पान करे, तो उसका चिनाश हो जायगा।]

पृष्ठ बाँधा जैसे कृष्ण-प्राक्षय कारण ।
असुर संहार—आसुषङ्ग प्रयोजन ॥३६॥

अतएव कृष्णायतारका कारण असुरोंका संहार करना नहीं है। मायातीत वैकुण्ठ आदि राज्योंमें भगवान्की जो सब लीलाएँ प्रकटित हैं, उनमें स्वयंरूप कृष्णकी चमत्कारिता नव-नवायमान नहीं होती है। वैकुण्ठसे ऊपर-स्थित गोलोकमें स्वयंरूप श्रीकृष्ण के निजसुख-तापर्यपर अर्थात् अपने सुखके हेतु जो समस्त लीलाएँ वर्तमान हैं, उनका उत्कर्ष एश्वर्य-प्रधान भक्तोंके निकट प्रदर्शन करनेके लिये वे (स्वयंरूप कृष्ण) उन लीलाओंको प्रपञ्चमें प्रकट करनेकी इच्छा करते हैं—(श्रीश्री प्रभुपाद)। यही 'इच्छा' कृष्णायतारका कारण है।

श्रीचैतन्यचरितामृतके उद्दृत पद्यांशोंका एकान्त मनसे अनुशीलन करनेसे उनका अर्थ स्पष्ट ही अनुभव किया जा सकता है। अतएव उनकी व्याख्या देकर प्रन्थ-विस्तारकी आवश्यकता नहीं है।

श्रीकृष्ण-जन्मकी रातके अन्तिम भागमें कंसने

देवकी शठ्यासे कन्या योगमायाको उठा कर ज्योही पथर पर पटकना चाहा, त्वं ही वे देवी उसके हाथों से लूटकर आकाशमें चली गयी। सिद्ध-चारण आदि उनकी घन्दना करने लगे। वे वहीं से कंसको उपदेश देती हुई बोलीं—

'किं मया हत्या मम्द जातः खन्तु तवान्तकृत ।

यत्र वत्र वा पूर्वशत्रुर्ना हिसोः कृपणान् वृथा ॥'

(भा० १०।४।१२)

[ते मूर्ख ! मेरी हत्या करनेसे तुम्हे क्या भिलेगा ? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तुम्हे मारनेके लिये किसी स्थान-पर पैदा हो चुका है। अब तू अर्थ निर्देशिंकी हत्या न किया कर।]

देवीकी ऐसी बात सुनकर कंसका वज्र सा कठिन हृदय कुछ कोमल हो गया। उसने उसी समय देवकी और वसुदेवको कैदमें छोड़ दिया तथा अपने पूर्व अत्याचारोंके लिये पश्चात्याप करता हुआ उनसे बड़ी नश्ताके साथ बातचीत किया। दूसरे दिन सबरे जब उसने अपने दुष्ट मंत्रियोंसे रातकी सारी कथा सुनायी, तब देवताओंके प्रति स्वभावसे ही ईर्ष्यायुक्त और भगवद्विरोधी उन मंत्रियोंने उसकी मतिको पुनः पलट दिया और उसे ब्राह्मणों, तपस्वियों, वज्र करनेवालों तथा छोटे-छोटे शिशुओंको मार डालनेके लिये परामर्श दिया। फिर क्या था, चारों तरफ भीपूर्ण अत्याचार होने आरम्भ हो गये। देवकी और वसुदेव पुनः कैदखानेमें ढाल दिये गये।

इधर अजमें नन्द महाराजने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तीवाचन और अपने नवजात पुत्रका जातकर्म संरक्षण सम्पन्न करयाया। ब्राह्मणोंको वीस लाख गोपैँ दान दिये। ब्रजपुरके सभी घरोंके बाहरी और भीतरी भाग साफ-सुथरा किये गये, उन्हें चित्र-चित्रित ध्वजा-पताका, माला, पल्लव, रंग-विरणे वस्त्र और बन्दनवारोंसे सुसज्जित किया गया। गीत-वाण्य, भेरियों और दुन्दुभियोंके नादसे चतुर्दिक् मुखरित हो उठा। गाय, बैल और बछड़ोंके अङ्गोंमें हल्दी और तेलका लेप कर दिया गया। उन्हें तरह-तरहके सुन्दर

रंगीन वस्त्रों और सोनेकी जंजीरोंसे सजा दिया गया। सभी गोप वहुमूल्य वस्त्र, गहने, अँगरखे और पगड़ियोंसे सुसज्जित होकर उत्सवकी सोभा बढ़ाने लगे। यशोदाजीको पुत्र हुआ है, यह सबर पाकर गोपियोंको बढ़ा आनन्द हुआ। वे सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों और अलङ्कारोंसे सज-धन्वन्तर कर भेटकी सामग्री लेने कर यशोदाके घर दौड़ी आयी। सबने नवजात शिशु-के कल्पाणके लिये लाख-लाख आशिष दिये और एक साथ मिलकर वडे आनन्दसे ऊँचे ऊरसे मङ्गल गान करने लगीं। आनन्दमें मग्न होकर गोपण एक दूसरेके ऊपर दूध, दही, धी और पानी फेंक-फेंक कर आनन्दोत्सव भनाने लगे। परन उदार नन्द महाराजने उन गोपोंको विविव प्रकारके गूल्यवान वस्त्र, आभूषण और गोएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया। पश्चात् विष्णुपूजाके लिये विशेष व्यवस्था कर आध्यापक और दूसरे-दूसरे गुणीजनोंका भी हर प्रकारसे आदर सत्कार किया। सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों और गलेके भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे सुसज्जित परम सोभाग्यवती रोहिणीजी नन्द महाराजके द्वारा अभिनन्दित हुईं। उस समय जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें नन्दवालाके ब्रजमें चारों और आनन्दकी बाहु आ गयी। उस समयसे ब्रज, भगवान् श्रीकृष्णके निवासके कारण लक्ष्मीका क्रीडस्थल बन गया तथा समस्त प्रकारकी सम्पदाओंसे पूर्ण हो गया। वहाँ पर अभाव-की कोई बात ही नहीं रहीं।

वैष्णवजन इस तिथिका पालन उपवास, निरन्तर कीर्तन और आधीरातके समय खूब समारोहके साथ पूजादिके द्वारा वडे गौरखके साथ करते हैं। दूसरे दिन वडे समारोहसे नन्दोत्सव सम्पादन कर महात्रसाद वितरण करते हैं। इस उत्सवमें जिन्हें उत्साह नहीं, वैष्णवजन उनका सङ्ग दुःसङ्ग समझ कर परित्याग कर देते हैं।

श्रीजन्माष्टमीकी कथाका अवण और कीर्तन करनेसे परम कल्पयाण होता है। भक्तोंकी तो कोई बात ही नहीं, उनके लिये तो यह एक विशेष कर्तव्य है ही; दूसरे लोग भी यदि सर्वसङ्गमें इसका अवण-कीर्तन करें और उत्सवादिमें योगदान करें, तो वे भी क्रमशः भगवद्गीताके मार्गमें अद्वा, रति और भक्ति लाभ कर सकते हैं। जीवोंके लिये इससे अधिक मङ्गलकी बात और ही ही क्या सकती है? भगवान्के यात्रा-महोत्सव आदिमें सक्रिय भाग लेनेसे भक्त्युन्मुखी सुकृति उत्पन्न होती है। श्रीमगवान् श्रीमुखसे (श्रीमद्भा० ११।१२।३६ में) भक्तोंके कर्तव्यकी एक तालिका दी है—

मञ्जस्यकमैकथनं नम पर्वातुमोदनम् ।
मीत तायद्वयादिवर्गोष्ठीमिस्तद्युहोत्सवः ॥

[श्रीभगवान् उद्योगीको कह रहे हैं—मेरे दिव्य जन्म-लीलाकी चर्चा करे, जन्माष्टमी आदि पर्वोंके दिन उत्सव करे या उस उत्सवमें योगदान करे और सङ्गीत, नृत्य और धार्योंके द्वारा गोप्त्रीके साथ मेरे मन्दिरोंमें उत्सव करें-करावे ।]

उक्त भगवद्गीतेश्वरसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान्से सम्बन्धित उत्सवोंके प्रति भगवद्गीताको उदासीन रहना कर्तव्य नहीं है।

पाठकवृन्द! आईये, अब हम सबलोग मिलकर उच्च स्वरसे धोषणा करें—‘बोलो, परमपूर्ण श्रीश्री-जयन्ती तिथिकी जय ! अवतारी तत्त्व श्रीश्रीकृष्ण-चन्द्रकी जन्माष्टमी तिथिकी जय ! जयन्ती अश्वदा रोहिणी नक्षत्र-शोभित श्रीश्री भगवद्वाविभाव-तिथिकी जय ! उसके पालनमें तत्पर श्रीश्रीगोरानुगत शुद्धभक्त-जनोंकी जय !!’

— श्रीहरिपद विजारण, ईम०ए० बी-एल०

जैव-धर्म

[एवं प्रकाशित वर्ष ४ संख्या २, एष एवं सागे]

ब्रजनाथ—‘तब क्या मायाशक्ति ही हमारी दुर्दशा का कारण है? यदि मर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ श्रीकृष्ण मायाको जीवोंसे दूर रखते तो जीवोंको ऐसा कष्ट होता?’

बाबाजी—‘माया स्वरूपशक्तिकी आया हैं। अतएव वे स्वरूप-शक्तिका विकार हैं। अनुपयुक्त जीवोंका संस्कार करनेके लिये वे मायी-स्वरूप हैं। अर्थात् उनको उपयुक्त चरनेका उपाय हैं। माया कृष्णकी दासी हैं। वे कृष्ण-विमुख जीवोंको दण्ड देवर तथा उनकी चिकित्सा कर शुद्ध करती हैं। ‘मैं कृष्णका नित्य दास हूँ’—इसे भूलना ही चिन्तकरण-स्वरूप जीवका अपराध है। इसी अपराधके लिये माया पिशाची जीवोंको दण्ड देती है। यह मायिक जगत् कारणगार है। इस कारणमें कृष्ण-विमुख जीवोंको बन्द कर दण्ड प्रदान करती है। जैसे राजा प्रजाकी भलाईके लिये कारणगारकी स्थापना करता है, वैसे ही भगवान् ने जीवोंके प्रति अपार करणा प्रकाश करते हुए जड़-जगत् स्वप कारणगारकी स्थापना की है तथा जडामायाको इस कारणगारकी रक्षित्री नियुक्त कर रखा है।’

ब्रजनाथ—‘यदि जड़ जगत् कारणगार है, तब उसके उपयुक्त जड़ीर (थड़ी-हथकड़ी) भी तो चाहिए। वह जड़ीर क्या है?’

बाबाजी—‘मायिक जड़ीर तीन प्रकार की होती है—सर्वगुणसे बनी हुई जड़ीर, रजेशुगुणसे बनी हुई जड़ीर और तमोगुणसे बनी हुई जड़ीर। माया अपराधी जीवोंको अपने इन्हीं तीन प्रकारके जड़ीरोंपे जकड़े हुए हैं। प्रत्येक जीव चाहे वह तामसिक हो या राजसिक अथवा वह सात्त्विक ही क्यों न हो मायीकी जड़ीरोंमें बैंधा हुआ है। जड़ीर सोनेकी

हो अथवा चाँदी या लोहेकी हो—भिन्न-भिन्न धातुओं द्वारा बनी होने पर भी, इनमें बौधे जाने पर जो कष्ट होता है, उनमें कीड़ी अन्तर नहीं होता।’

ब्रजनाथ—‘माया की जड़ीर चिन्तकण-विशेष जीवोंको किस प्रकार बाँध सकती है?’

बाबाजी—‘मायिक वस्तु चिद्रवस्तुको स्पर्श करनेमें असमर्थ होती है। परन्तु ‘मैं मायाका भोक्ता हूँ’—जीव जभी ऐसा अभिमान करता है, उसी समय जीवका अरण-चिन्तकण-स्वरूप जड़-अहंकारस्वरूप लिंग (मूल्य) शरीरसे आवृत हो पड़ता है। सूक्ष्म शरीर द्वारा आवृत जीवके दोनों पैरोंमें मायिक जड़ीरें पड़ जाती हैं; सात्त्विक अहङ्कारसे युक्त उच्च तर लोकोंमें वास करनेवाले जीव देवता वहलाने हैं, उनके पैरोंमें सोनेकी अर्थात् सात्त्विक जड़ीर होती है। राजस जीव देवता और मानव भाव मिश्र होते हैं। उनके पैरोंमें चाँदीकी अर्थात् राजस जड़ीर होती है और तामस जीव पंचमकारण जड़ानन्दमें भृत रहते हैं। उनके पैरोंमें लोहेकी अर्थात् तामस जड़ीर होती है। इन जड़ीरोंमें जकड़े हुए जीव कारणगारसे बाहर नहीं निकल सकते—नाना-प्रकारकी यंत्रणाओंको भोगते हुए भी उसीमें आचढ़ रहते हैं।’

ब्रजनाथ—‘मायाके कारणगारमें बद्रजीव क्या-बद्य करते हैं?’

बाबाजी—‘सबसे पहले जीव अपनीमायिक भोग प्रवृत्तिके अनुसार ऐसे-ऐसे कर्मोंको करता है, जिससे वह अपने मनोवान्धित भोगोंको प्राप्त कर सके और द्वितीयतः मायिक जड़ीरसे बैंधा होनेके कारण उसे जो सब कष्ट प्राप्त होता है, उसे दूर करनेकी चेष्टा रहता है।’

ब्रजनाथ—‘हमवा पहले प्रकारके कर्मोंको विनाश-पूर्वक बतलाइये।’

बाबाजी—‘स्थूल शरीर ही स्थूल आवरण है। स्थूल आवरणकी छः अवश्य पहुँच होती है—जन्म, उसका अस्तित्व, ह्रास, वृद्धि, परिणाम और मृत्यु। यह छः प्रकारका विकार स्थूल शरीरका धर्म है। जुधा, प्यास—यह सब जड़ शरीरका अभाव है। जड़ शरीरमें स्थित जीव अपनी भोग-वासनाओंके द्वारा परिचालित होकर आहार, निद्रा और सङ्ग्रह आदिके वशीभूत होता है। माध्यिक विषयोंका भोग करनेके लिये जीव नाना-प्रकारके काम्यकर्मोंके करता है। स्थूल शरीरके जन्मसे लेकर चितारोहण तक दृग्ग प्रकारके कर्मोंका अनुष्टुप्न करता है। वेद-विहित अठारह प्रकारके और भी कर्मोंका आचरण करता है। वह इन कर्मों द्वारा पुण्य संचय कर स्वर्गमें देवभोग्य भोगोंको और मर्त्यलोकमें ब्राह्मण आदि उच्चचकुलमें जन्म लेकर संसारिक सुखोंको भोग करनेकी आशासे कर्म मार्गमें प्रवृत्त होता है। दूसरी तरफ बढ़जीव धर्मका आश्रय कर नाना प्रकारके पाप कर्मों द्वारा इन्द्रिय-सुख भोग करता है। पहले प्रकारके जीव पुण्यजनक कर्मोंके द्वारा स्वर्गादिमें गमन कर देवभोग्य विषयोंका भोग करते हैं तथा भोग काल समाप्त होने पर पुनः सूखलोकमें मनुष्यादि शरीर प्राप्त करते हैं। शेषोंके प्रकार के जीव पाप आचरणसे नरकमें नाना प्रकारकी यंत्रणाओंको भोग कर पुनः सूखलोकमें जन्मते हैं। इस प्रकार मायाबद्ध जीव विषय-सुखोंको भोग करनेके लिये कर्म-व्यक्तिमें फँसकर इधर उधर चक्कर कर टूटा रहता है। बीच-बीचमें अपने पुण्यजनक कर्मोंके फलसे कुछ नश्वर सुख भोग और पाप कर्मोंके फलसे कुछ भोग भी करता जाता है।’

ब्रजनाथ—‘दूसरे प्रकारके कर्मोंको भी स्पष्ट करें।’

बाबाजी—‘स्थूल शरीरमें स्थित जीव स्थूल-शरीर-गत नाना प्रकारके अभावोंके जालमें पड़ कर बहुत ही कष्ट पाता है। वह इन कष्टोंको दूर करनेसे लिये नाना प्रकारके कर्म करता है। जुधा और तृष्णाके कष्टको दूर करनेके लिये खाल और पेय पदार्थोंका संप्रह करता है। वे दूब्य अत्यन्त सहज ही लक्ष्य हो सकते हैं—इसके लिये वह जी-तोड़ परिश्रम कर अर्थे

संप्रह करता है। शीतसे बचनेके लिये गर्म वस्त्रोंका संप्रह करता है, इन्द्रिय-सुखकी वासना मिटानेके लिये विवाह करता है, कुदुम्ब और सन्तान आदिका भरण-दोषण करनेके लिये—उनके अभावोंको दूर करनेके लिये अथवा परिश्रम करता है, स्थूल शरीरमें रोग पैदा होने पर उस दूर करनेके लिये औपथिका प्रथोग करता है, विषयोंकी रक्षाके लिये दूसरोंसे लड़ाई मारडा करता है और न्यायालयमें उपस्थित होता है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—इन पड़िरिपु-ओंके अधीन होकर युद्ध, कलह, द्विषा और चोरी आदि दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। सुखसे वास करनेके लिये सु-दरस-सुन्दर भवनोंका निर्माण करता है—यह सब कर्म अभावकी निवृत्तिके लिये हैं। भोगकी प्रवृत्ति और अभावकी निवृत्तिके कार्योंमें ही मायाबद्ध जीवकी सारी आयु निकल जाती है।’

ब्रजनाथ—‘यदि मायाबद्ध जीव-स्वरूपको केवल सूख शरीर द्वारा ही आच्छादित करती, तो क्या उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता?’

बाबाजी—‘सूख-शरीरसे कार्य नहीं होता। इस-लिये स्थूल आवरणकी आवश्यकता होती है। स्थूल शरीरसे जो कार्य किये जाते हैं, उनसे सूख शरीरमें वासनाएँ पैदा होती हैं। पुनः उन वासनाओंको भोग करनेके उपयोगी स्थूल शरीरकी प्राप्ति होती है।’

ब्रजनाथ—‘कर्म और फल-ये दोनों एक साथ कैसे संयुक्त हैं? मीमांसकोंका बहना है कि वास्तवमें फलदाता ‘ईश्वर’ नामक कोई प्रदार्थ नहीं है; ईश्वर एक कलित्प वदार्थ है। किये गये कर्मोंसे एक तच्च उपज्ञ होता है, जिसे अपूर्व कहते हैं; यह ‘अपूर्व’ ही समस्त कर्मोंका फल दान करता है। क्या यह सत्य है?’

बाबाजी—‘कर्म-मीमांसक वेदके वास्तविक सिद्धान्तसे परिवित नहीं होते। उन्होंने वेदमें मोटे तीर पर यज्ञादि कर्मोंका भाव देखकर एक जैसा-तैसा सिद्धान्त गढ़ लिया है। वास्तवमें जहाँ तक सिद्धान्तका प्रश्न है, वेदोंमें कहीं भी ऐसा सिद्धान्त नहीं पाया जाता। वेदोंमें ईश्वरको स्पष्ट हृपसे दर्म-

कलदाता स्थिर किया गया है। इस विषयमें वेदका यह स्पष्ट मत है—

द्वा सूर्यो सयुजा सत्वाया, समानं वृक्षं परियस्वजाते ।
तथोरन्यः पिपलं स्वादृत्य-नश्नक्षन्यैऽभिचाक्षीति ॥ (५)

(श्वेत ४१, सुषडक ३।११, ज्ञानेद् १।१४।२१)

—इस वेद मन्त्रका भावार्थ यह है कि संसार रूपी पीपलके वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हुए हैं—एक बढ़ जीव, दूसरा उसके सत्वाके रूपमें—ईश्वर। बढ़जीवरूप पक्षी संसार वृक्षके फलोंको देखते हैं और ईश्वररूप पक्षी उन फलोंका स्वयं उपभोग न कर जाओ रूप पक्षीके आस्वादन कार्यको देखते हैं। तात्पर्य यह है कि जीव माया द्वारा बढ़ होकर कर्म करते हैं और कर्मका फल भोग करते हैं। मायाशीश ईश्वर जीवको उसके कर्म-नुसार फल देते हैं। उनकी बैसी लोला तथतक चालू रहती है, जबतक जीव भगवत्-सान्मुख्य प्राप्त नहीं कर लेता। अब तुम्हीं सोचो, यहाँ मीमांसकोंका अपूर्ण कहाँ गया ? निरीश्वर सिद्धान्त कभी भी सवाँग सुन्दर नहीं होता ।

ब्रजनाथ—‘आपने कर्मको अनादि कहा है ?’

धावाजी—‘समस्त कर्मोंकी जड़ कर्म वासना है और कर्म वासनाकी जड़ अविद्या है। मैं कृष्णका दास हूँ’—इसे विमृत होनेका नाम ही ‘अविद्या’ है; इस अविद्याकी उत्पत्ति जड़-कालमें नहीं है। यह ‘तटस्थ’—सन्धिस्थानपर उत्तित हुई थी। इसीलिये जड़-कालमें कर्मका आदि नहीं पाया जाता। यही कारण है कि कर्मको अनादि कहा गया है।

ब्रजनाथ—‘माया और अविद्यामें क्या अन्तर है ?’

धावाजी—‘माया कृष्णकी शक्ति है, श्रीकृष्णने उस माया शक्तिके द्वारा जड़ ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है और वहिसूख जीवको शुद्ध करनेके लिये मायाशक्ति को कियावती बनाया है। मायाकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ हैं—अविद्या और प्रवान। ‘अविद्या’ वृत्ति—

जीवनिष्ठ है और ‘प्रवान’—जड़निष्ठ है। प्रवानसे समस्त जड़ जगत् उत्पन्न हुआ है तथा अविद्यासे जीवकी कर्म-वासना पैदा हुई है। मायके और भी दो प्रकार के विभाग हैं—विद्या और अविद्या। इन दोनोंका सम्बन्ध जीवसे है अर्थात् ये जीवनिष्ठ हैं। अविद्या-वृत्तिसे जीवका बंधन होता है और विद्या-वृत्ति द्वारा जीवकी मुक्ति होती है। अपराधी जीव जिस समय कृष्णोन्मुख होता है, उस समय उसके अन्दर विद्या-वृत्तिकी क्रिया आरम्भ होती है। परन्तु जबतक वह श्रीकृष्णको भूला हुआ होता है, तबतक उसके अन्दर अविद्या-वृत्तिकी ही क्रिया चालू रहती है। ब्रह्मान आदि विद्यावृत्तिकी ही क्रिया-विशेष हैं। विद्येकके प्रथम भागमें जीवकी शुभ चेष्टाओंका प्रादुर्भाव होता है और अन्तिम भागमें सुखानका उदय होता है। अविद्या जीवको आदृत करती है और विद्या—उस आवरणको दूर करती है।

ब्रजनाथ—‘प्रवानकी क्रिया कैसे होती है ?’

धावाजी—‘ईश्वर-चेष्टारूप कालके द्वारा माया-प्रकृति लोभित होने पर पहले-द्वितीय उत्पन्न होता है। मायाकी इस वृत्तिका नाम—‘प्रवान’ है। प्रवान लोभित होने पर द्रव्यकी सृष्टि होती है। महत्त्वका विकार उत्पन्न होने पर ‘आहंकार’ होता है। अहंकारके तामस विकारसे ‘आकाश’ पैदा होता है। आकाश विकृत होने पर ‘वायु’ और वायुके विकारसे ‘तेज’ पैदा होता है। पुनः तेजके विकारसे जल और जल विकृत होकर पृथ्वी होता है। जड़-द्रव्योंकी इसी प्रकार सृष्टि हुई है। इनका नाम पंच-महाभूत है।

अथ पंचतन्मात्राकी सृष्टि-प्रणाली सुनो—काल प्रकृतिकी अविद्या रूप वृत्तिको लोभित करके नहत्त्वके ‘ज्ञान’ और ‘कर्म’ भावको दैश करता है। महत्त्वका कर्म भाव विकृत होकर सत्त्व और रजा-

(क) चौरांदशायी पुरुष और कीव इस अनित्य संसाररूप पीपलके वृक्षके ऊपर सत्वाको तरह बास करते हैं। उन दोनोंमें से एक अर्थात् जीव अपने कर्मके अनुसार उस वृक्षके फलोंका खेल रहा है और दूसरा अर्थात् परमात्मा उन फलोंका उपभोग न कर सत्त्वी स्वरूप केवल देख रहा है।

गुणसे ज्ञान और क्रियाकी सृष्टि करता है। उसी प्रकार महत्त्व भी विकृत होकर अहंकार होता है। अहंकार विकार प्राप्त होने पर बुद्धि उपच द्वारा होती है। बुद्धि विकृत होकर आकाशका 'शब्द' गुण पैदा करती है। शब्द गुणके विकारसे सर्व-गुण उपच होता है। इसमें वायुका स्वर्ण गुण और आकाशका शब्दगुण दोनों ही होते हैं। इससे प्राण, ओज़ और बलकी सृष्टि होती है। सर्व गुण विकृत होने पर तेज़: पदार्थमें रूप, स्वर्ण और शब्दगुण उपच होते हैं; उस गुणके काल डारा विकार होने पर जलमें रस, रूप, सर्व और शब्द गुणोंका प्रादुर्भाव होता है। उस विकारसे पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, सर्व और शब्द गुण पैदा होते हैं। इस विकार क्रियामें, चैतन्यरूप पुरुषकी व्यायोग्य सहायता होती है।

अहंकार तीन प्रकारका होता है—वैकारिक, तैजस और तामस। वैकारिक अहंकारसे द्रव्योंको उत्पत्ति होती है; तैजस अहंकारसे दस इन्द्रियाँ पैदा होती हैं। इन्द्रियाँ दो प्रवारकी होती हैं—ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ। चक्षु, कर्ण, नासिका, जिहा और त्वचा—ये पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं; वाणी हाथ, पैर, गुदा और उपर्युक्त—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार महाभूत और सूक्ष्म भूत, ये सब एकत्रित होने पर भी कोई कार्य नहीं होता, जब तक कि उनमें अगुचित् जीव प्रवेश नहीं करता। किन्तु महाभूत और सूक्ष्म भूतसे बने हुए शरीरमें अगुचित् व्योही प्रवेश करता है, तो ही सारे कार्य होने लगते हैं। वैकारिक तैजस गुण, 'प्रधान' विकृत तामस वस्तुके संघ भिलकर कार्य करनेके लिये उपयुक्त होता है। इसी प्रकारसे अविद्या और प्रधानकी क्रियाएँ होती हैं।

मायिक तत्त्व नभु प्रकारके होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, ये पाँच महाभूत; गंध, रस, रूप, सर्व और शब्द,—पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञाने-

न्द्रियाँ, पाँच वर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—ये २४ तत्त्व प्राकृत तत्त्व हैं। इन चाँचीस तत्त्वोंसे गठित शरीरमें प्रविष्ट असुचैतन्य जीव पञ्चीसवाँ तत्त्व हैं तथा परमात्मा ईश्वर ही नहीं हैं तत्त्व हैं।'

ब्रजनाथ—'सादे तीन हाथ लम्बे इस शरीरमें सूक्ष्म शरीरका भाग कितना है और सूक्ष्म शरीरका भाग कितना है? एवं इस शरीरके किस भागमें जीव चैतन्य वस करता है?'

बाबाजी—'येचमहाभूत, पञ्चतन्मात्राएँ, दस इन्द्रियाँ—यह सब सूक्ष्म शरीर हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—यह सब सूक्ष्म आर्थित् लिंग शरीर हैं। इस जह शरीरमें जी 'मैं' और 'मेरा' ऐसा मिथ्या-अभिमान करते हैं तथा उस मिथ्याभिमानके कारण जो स्वरूप थसे च्युत हो गये हैं, वे जीव-चैतन्य हैं। वे अत्यन्त सूक्ष्म और जड़ीब देश, काल और गुणोंसे अतीत होते हैं। इसीलिये अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी सारे शरीरमें उनकी सक्ता व्याप होती है। जैसे 'हरिचन्दन विन्दु' (क) शरीरके किसी एक दंशमें व्यष्टहार करनेसे सारे शरीरमें ही सुख व्याप हो जाता है। उसी प्रकार अणुमात्र जीव भी समस्त शरीरका चेत्रज्ञ और सुख-दुःखका अनुभव करता है।'

ब्रजनाथ—'यदि जीव कर्मका और सुखदुःखोंका अनुभवकर्ता ठहरता है, तो ईश्वरका कर्तृत्व कहाँ रहा?

बाबाजी—'जीव-हेतुकर्ता है एवं ईश्वर-प्रयोग-जन कर्ता है। जीव अपने कार्मोंका कर्ता होकर जिन कलोंको भोगनेका अधिकारी होता है तथा जिन अगले कर्मोंके लिये वह उपयोगी बनता है, उनकलोंको भोगनेमें तथा कर्मोंको करानेमें ईश्वर प्रयोजक करता है। ईश्वर—कलदाता है; जीव-कलभोक्ता है।'

ब्रजनाथ—'मायाबद्ध जीवोंकी कितनी प्रकारकी अवस्थाएँ हैं?'

(क) 'अविरोधशब्दनवद' (ब० स० २३ २२) इस सूत्रके बलदेवकृत 'गोविन्द भाष्य' की व्याख्या—एक देशस्थस्थिपि हरिचन्दनविन्दोः सकलवेदाहाद्वदनभूतस्थापीत्यर्थः।

बाबाजी—‘पाँच प्रकारकी। अर्थात्, आच्छादित चेतन; संकुचित चेतन, गुकुलित चेतन, विकसित चेतन और पूर्ण विकसित चेतन।’

ब्रजनाथ—‘कौन-कौन जीव आच्छादित चेतन हैं?’

बाबाजी—‘वृत्त, लता, तुण, पत्थरकी योनिको प्राप्त हुए जीवोंको आच्छादित चेतन कहते हैं। ये जीवदास्यको भूलकर मायाके जड़ तुणोंमें इतने दूर तक अभिनिविष्ट होते हैं, कि इनके चिद्रम्भका परिचय लुप्तप्राय होता है। केवल छः विकारोंके(क)द्वारा इनके चिद्रम्भका नाममात्रका परिचय पाया जाता है। यह अवस्था जीवके पतनकी चरम सीमा है। अहल्या(थ) यमलाञ्जुन(ग) और समताल(घ) की

पौराणिक गाथाओं पर विचार करने पर उक्त कथन-की पुष्ट होती है। किसी विशेष प्रकारके अपराध होने पर ही वैसी गति प्राप्त होती है एवं कृष्णकी कृपासे ही उस अवस्थासे मुक्ति मिलती है।’

ब्रजनाथ—‘संकुचित चेतन कौन है?’

बाबाजी—‘पशु, पक्षी, सर्प, मछली, जल-जन्तु, कीट-पतंग—ये संकुचित चेतन हैं। आच्छादित चेतनकी चेतनताका परिचय प्रायः लुप्त होता है। परन्तु संकुचित चेतनकी चेतनता फुल अर्थोंमें अनुभूत होती है। आहार, निद्रा, भय, इच्छानुसार गमन, गमन, अपना अधिकार जानकर दूसरोंसे लडाई-भगदी, अन्याय देखकर क्रोध—यह सब संकुचित चेतनमें पाया जाता है। इनमें केवल परलोकका ज्ञान

(क) छः विकार—जन्म, स्थिति, बुद्धि, परिणाम, चय और विनाश।

(ख) अहल्या—सत्ययुगकी वात है। अपने पतिदेव श्रीगौतम भृषि के अभिशापसे अहल्याको पाषाणका शरीर प्राप्त हुआ था। पतिके अभिशापको सुनकर वे बड़ी हुँसी हुई और गौतम भृषि के चरणोंमें गिर कर रोते-रोते अपनी मुक्तिके लिये प्रार्थना करने लगी। पतिको इस प्रकार रोते देखकर उनको बड़ी दया आयी। उन्होंने अहल्याको धीरत देते हुए कहा कि जैवायुगमें भगवान् रामचन्द्र वृषभीका भार उत्तरासे किये अपलाह लेये। तब उनके चरणों-के स्पर्शसे पत्थर योनिसे तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी। इस पर अहल्या ने कहा—‘देव ! आमी तो सत्ययुग चल रहा है। इसके बादमें द्वितीय युग द्वापर अव्यया और द्वापरके बोझने पर व्रेतायुग प्रारम्भ होगा। अगप्त व्रेतायुग आनेमें बड़ी देर है। मैं इतने दिनों तक कैसे कष्ट सोगूँगी ? आप दया करें, तिये मेरा जल्द जल्द उद्धार हो !’ गौतमने प्रसन्न होकर उत्तर दिया—‘अबहारी नहीं। तुम्हारे लिये हव कल्पमें अर्थात् २८ वें चतुर्थग्रन्थमें सत्ययुगके बाद ही व्रेतायुग प्रारम्भ होगा। और द्वितीय युग द्वापर तृतीय युग व्रेताके पश्चात् तीसरे युगके रूपमें प्रकाशित होगा।’ गौतमकी इच्छासे वर्तमान चतुर्थग्रन्थमें युगका क्रम बदल गया। सत्यके बाद ही व्रेताका आगमन हुआ। श्रीरामचन्द्रने व्रेतामें अवतार लेकर अपने चरणोंके स्पर्शसे पाषाणी अहल्याका उद्धार किया। अहल्या, आच्छादित चेतनरूप पाषाण शरीरसे उद्धार लाभकर पुनः पतिदेवके निकट चली गयी।

(ग) यमलाञ्जुन—एक समय कुबेरजीके पुत्र नलकुबर और मणिग्रीव मन्दाकिनीके उटपर कामोन्मत होकर नग्न अवस्थामें स्त्रियोंके साथ विहार कर रहे थे। संयोगवश देवर्षि नारद घृमते-बामते उमी रास्तेये गुजरे। परन्तु नलकुबर और मणिग्रीव न तबाजे और कामोन्मत हो रहे थे। उन्होंने देवर्षिकी तनिक भी परवा नहीं की। देवर्षिका सम्मान करना तो दूर रहे, जब रमणियाँ लड़ा और भयसे कौपती हुई अपने अपने दस्तोंको पढ़नकर देवर्षि नारदके पास पहुँचकर उनके चरणोंमें गिरकर चमा चौंगने लगीं, तब वे दोनों भाई उन पर दिग्दन्ते लगे। उनकी वैसी ज्ञान-शून्य अवस्थाको लक्ष्यकर नारदजीने उन्हें कृच योनिमें जम्म प्रदेश करनेके लिये अभिशाप दिया। फलस्वरूप वे गोकुलमें यमकाञ्जुन वृत्त (आच्छादित चेतन) के रूपमें जन्मे। द्वापर युगमें भगवान् श्रीकृष्णके चरण कमलोंके स्पर्शसे उनका उद्धार हुआ था।

(घ) रसताल—व्रेतायुगमें कपिवति वालिको एक समय कहींसे वहे मोठे-मोठे सात लाज कल मिले। वे

नहीं होता। बानरोंकी दुष्ट बुद्धिमें कुछ हद तक विज्ञान-विचार भी देखा जाता है। पीछे क्या होगा, क्या नहीं होगा—वे इन विषयोंकी भावना करते हैं। कृतज्ञता आदि गुण भी इनमें देखे जाते हैं। किसी-किसी जानवरमें द्रव्य-गुण सम्बन्धी ज्ञान भी अच्छा होता है। परन्तु इतना होने पर भी इनमें ईश्वर-

जिज्ञासाकी प्रवृत्ति नहीं होती। अतएव इनका चेतन धर्म संकुचित होता है। भरत महाराजको मृग शरीर की प्राप्ति होने पर भी उनमें भगवद्गामका ज्ञान था—शास्त्रोंसे ऐसा जाना जाता है। किन्तु वह साधारण विधि नहीं है, स्थल विशेषमें ऐसा होता है। भरत(क)

उन्हें किसी जगह देखकर स्नान करने चले गये। सोचा—‘अभी स्नानसे लौटकर इन फलोंको खायेंगे।’ किन्तु स्नानसे लौटकर देखा कि एक विषधर लाडले उन सातों फलोंको नष्ट कर चुका है। इसपर बालिको बड़ा दी कौश आया। उन्होंने सर्वको श्रमिष्ठाप दिया कि वह बुद्धियोनि लाभ करे। शायके प्रभावसे सर्व तुरन्त ही ‘सप्तताल’ वृष्णोंके रूपमें आच्छादित चेतन जन्मको प्राप्त हुआ। बालिके इस कार्यसे सर्व पिता वहे हुँसित और कोखित हुए। उन्होंने भी बालिको शाप दिया—‘जो इन सात तालबृशोंको एक ही बोलसे बींध देगा, वह बालिका बध करेगा।’ श्रीरामचन्द्रजीने ‘सप्तताल’ वृष्णोंको एक ही बालसे बींधकर सुभ्रीदको विश्वाल दिलाया था। हि वे बालिका बध करनेमें समर्थ हैं। कलियुगमें भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुजी जीवोंका उद्घास करनेके लिये दक्षिण भारतमें अमर्य करते समय ‘सप्त ताल’ वृश्चको देखकर प्रेससे नदू गढ़ हो गये और उनके आलिंगन करनेके साथ-साथ वे तृतीय अन्तर्दर्ढन हो गये। वे श्रीमद्भाग्वतकी स्वर्ण पाते ही आच्छादित चेतन जन्मसे मुक्त हो गये। उस आश्चर्यजनक लीलाको देखकर वहाँके अधिकारियोंने श्रीचैतन्यमहाप्रभुको साक्षात् श्रीरामचन्द्र राना था। ‘श्रीचैतन्यवित्तामृत’ में इसका इस प्रकार वर्णन है—“सप्तताल तृतीय देखे कानन भीतरे। अति तृतीय, अति स्थल अति उच्चतर ॥ सप्तताल देखि प्रभु आलिंगन कैल। सशरीरे सप्तताल अन्तर्दर्ढन हैज ॥ शून्यस्थल देखि लोकोंका हैज जमाकार। लोके कहे ए संन्यासी—राम अवतार ॥ सशरीरे ताल गेल श्रीदंकुण्ड धार। मेरे शक्ति कार हय, विन एक राम ॥”

भरत—शम्भवेशावतार लूपभद्रेवके १०० युत्र थे। उनमें भरत सबसे बड़े थे। पिता ब्रह्मण होनेपर भी भरतके गुण और कर्म विश्वसे थे, दृश्यलिये वे लक्षित हुए थे। पिताकी हच्छासे भरत समागम समस्त शृण्वीके सम्भाद् पदपर अभिधिक हुए थे। इतना होनेपर भी महाराज भरत वडे भगवद्भक्त थे। बहुत दिनों तक राज्य करनेके पश्चात् संसारसे विश्व कोइकर उन्होंने अपना सारा राज्य और सारी सम्पत्ति अपने योग्य पुत्रोंमें बांट दिया। और अकेले राजमहलसे निकलकर पुलहाथम (हरिहर चैत्रमें जाकर भगवान् की आराधनामें वरपर हो गये। एक दिन वे अपने आश्रमके पास ही पुण्यतोदय गणहठी नदीमें स्नानकर उसके पवित्र तटपर भगवद्गामका जप करने लगे। उसी समय उनकी दृष्टि एक पासी हरिनीके ऊपर पढ़ी, जो चौकली होकर दृष्टि देखती हुई जल पी रही थी। इतनेमें ही पास ही एक लिहका भवंकर गर्जन सुनकर मनवश एकाएकी नदीको पार करनेके लिये छलाङ्ग सारी। उसके पेटमें गर्भ था; अतः हठात् उद्वलनेसे उसके गर्भका वरचा योनि-द्वारसे निकलकर नदीके प्रवाहमें गिर पड़ा। उधर हरिनी उस पार जाकर मर गयी। भरतको वही दृश्य आयी। उन्होंने दौड़कर नदीके प्रवाहमें छूते हुए मालूमीन मृग-जाग्रको उठा लिया और आश्रमपर लाकर वहे जान्हुने उसका पालन पोषण करने लगे। मृगलौनेके प्रति उनकी ममता उत्तरोन्तर बढ़ने लगी। जैसे-जैसे उनकी ममता बढ़ते गयी, जैसे तैसे उनका साधन भजन भी छुटता गया और अन्तमें वे सम्पूर्ण रूपसे भगवद्भजनसे द्युत हो गये। एक दिन अहस्मात् उप मृग-छुनेको कहीं न देखकर वे शोकसे आर्धीर होकर ‘हा मृग’ हा मृग’ पुकारते-पुकारते अपने प्राणोंकी छोड़ दिये। तदन्तर अन्तकालकी भावनाके अनुसार भरतकी मृग-जन्म मिला। परन्तु यूं जन्मकी भगवद्गावताके प्रभावसे अपने पतनका कारण समरणकर उसको बढ़ा दृश्यावाप हुआ। वे माता-पिताको छोड़कर युन: पुकारते जन्मसम्म चले गये और यहाँ भगवद्गामका भवण कर मुक्त हुए।

और नुगराज(क) को उनके अपराधके लिये पशु योनि-में जन्मलेना पड़ा था। भगवानकी कृपासे अपराधोंके क्षय होनेपर उनकी सद्गति हुई थी।'

ब्रजनाथ—'मुकुलित चेतन कीन हैं ?'

वावाजी—'मनुष्य शरीरमें घटुजीयोंकी तीन प्रकारकी अवस्थाएँ लक्षित होती हैं। वे अवस्थाएँ हैं—मुकुलितचेतन, विकसित चेतन, और पूर्ण विकसित चेतन-अवस्था। मानव जातिको साधारणतः पाँच भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) नीति-रहित मानव, (२) निरीश्वर-नैतिक मानव, (३) सेश्वर नैतिक मानव, (४) साधन भक्त मानव और (५) भावभक्त मानव। जो मनुष्य जान या अनजानमें निरीश्वर है; वे या तो 'नीति शून्य' होते हैं अथवा 'निरीश्वर नैतिक'। नीतिके साथ योऽसा ईश्वर विश्वास युक्त होने पर मनुष्य 'सेश्वर नैतिक' कहलाता है।

॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

ये। यदि संकुचित चेतनका दृष्टान्त है। इसी प्रकार व्यापी और संभ्यासी होनेपर भी यदि कोइ स्त्री-आदि के प्रति आसक्त होता है, तो वह अवश्य-अवश्य अधोगतिको प्राप्त होगा। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि 'कमोऽसन्ति द्वारा मनुष्य जन्म ही सर्वोत्तम जन्म है और इससे पुनः पतन नहीं होता'—ऐसा मत नितान्त देश और भारत है। वासनानुसार जन्म होगा ही होगा। इसमें परिवर्तनको संभवना नहीं। भरतने अपने जीवन-चरित्र द्वारा यही शिखा दी है।

(क) राजा नृग—ये महाराज हृष्टवाकुपे पुत्र थे। ये बड़े दानी थे। इन्होंने अगणित ब्राह्मणोंको अगणित सुखप्रद गौवें दान दी थी। एक बार उनकी दान दी हुई गाय बाह्यणके घरमें राज भवनमें लौट आयी और राजाने अनजानमें उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया। दान वानेवाले बाह्यण जब उस गायको लेकर घर चले तो रास्तेमें उस गायके पूर्व स्वामी उस गायको अपनी घताने लगे। इस पर दोनों ब्राह्मण परस्पर झगड़ पड़े और न्याय के लिये राजा भगवके पास आये। भगवको दूर करनेके लिये राजाने डब विप्रोंको उस गायके बदले अब्दग-अलग एक-एक लाग्ज उत्तम गौदूँ प्रहण करनेके लिये अनुरोध किया। परन्तु वे दोनों विप्र असम्मुट होकर घर लौट गए। इधर काल उपहित होने पर राजा नृगका देहान्त हो गया। यमराजके हूतोंने उन्हें यमपुरीमें यमराजके सामने उपहित किया। यम महाराजने एड़ा—'तुम अपने पुरुषका फल आये भोगना आहते हो या पापका?' राजने उत्तर दिया—'पापका।' इतना कहनेके साथ ही साथ वे नीचे गिरे और गिरगिटका शरीर पाकर एक जल-शून्य कुँएमें बास करने लगे। हापर युगमें एक दिन वादव कुनारोंकी उपवनमें खेलते-खेलते बढ़ी प्राप्त लगी। वे जल ढूँढते-ढूँढते उसी कुर्दूके पास पहुँचे और उसमें एक बड़े जानवरको पढ़े हुए देखा। वे वहाँसे लौट कर ओङ्कूशसे उस विचित्र जानवरके कुर्दूमें गिरनेकी बात कही। श्रीकृष्णने उसे अपने दौँये हाथसे खेल ही में कुर्दूमें आहर निकाल दिया। कृष्णके कर-कमलोंके स्पर्श होते ही नगराजा गिरगिट योनिसे मुक्त हो गये। इसमें यह शिखा। मिलती है कि ब्राह्मण और देवतायोंका योद्धासा भी पूर्व आपहरण करनेपर जीवकी चेतना संकुचित ही जाती है और उसे गिरगिट आदि आच्छादित चेतनका जन्म लेकर उपका फल भोगना पड़ता है।